प्रकाशक—
कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स
ज्ञानवापी, वाराणसी–१

लेखक की अन्य प्रकाशित रचनायें

रोते नैना	३.००
तिनके	३.००
ओस और आँसू	२.५०
भँवर	३.७०

तृतीय संस्करण
१९६५
मूल्य ४)

मुद्रक—सोमारु राम,
गौरीशंकर प्रेस,
वाराणसी–१

उस अज्ञात यौवना को,

जिसके आकर्षण ने रेल दुर्घटना में मेरी प्राण-रक्षा की थी

— कथाकार

रचना-कालः

प्रारंभः २० अगस्त, १९५१

अंतः २७ अगस्त, १९५१

मोह-माया

१

हवा के झोंके के कारण दीवट की लौ काँप रही थी। उसी लौ के साथ-साथ कोठरी का अंधकार और प्रकाश भी काँप रहा था।

मोहन ने कागज पर से आँख उठाकर काँपती हुई लौ को देखा। सोचा, उसकी जिंदगी भी तो इसी काँपती लौ की तरह है। जहाँ जरा-सा तेज झोंका आया कि सब समाप्त। फिर प्रकाश की क्षीण रेखा भी नहीं। मौत का-सा घटाटोप अँधेरा, घना, गहरा!

दीवट में थोड़ा सा तेल रह गया था और काली पड़ चली रुई की बत्ती भी समाप्त होने को थी। इस समय लगभग दस बज रहा है। दूकानें बन्द हो गई होंगी। भला जाड़े की रातों में कौन इतनी देर तक अपनी दूकानें खोले रहेगा। आठ बजते-बजते दूकानों का उठना शुरू हो जाता है और नौ बजते-बजते बाजार में मौत का-सा सन्नाटा छा जाता है।

खिड़की से बाहर देखा। दुनियाँ सो रही थी।

वह मुस्कुराया विद्रूप भरी मुस्कान। इस समय सारी दुनियाँ सो रही है और एक वही है जो अब तक जाग रहा है, और जब तक यह दीवट चिल्लाकर नहीं कह देगा कि अब वह नहीं जल सकेगा, वह जागता रहेगा, सर्दी से ठिठुरता, ठंढ से काँपता।

उठकर उसने खिड़की वन्द की ताकि सर्द हवा अन्दर आकर उसकी हड्डियों को न हिलाये।

दीवट की लौ अब भी काँप रही थी।

उसकी काँपती हुई कलम कागज पर दौड़ने लगी।

लिखते-लिखते उसकी कलाई में दर्द होने लगा। कमर दुखने लगी, पर वह लिखता ही रहा। उसके दिमाग में उमड़ते कलम के सहारे कागज पर उतरते रहे।

लौ का काँपना कम हो गया था, उसके साथ-साथ उसका प्रकाश भी। तेल खत्म हो चुका था। बत्ती सुलगने लग गई थी, जिसकी वजह से कुछ काला और कुछ सफेद धुआँ उठने लगा।

कोठरी में छाते अंधकार को उसने विसूर कर देखा और फिर उँगलियाँ तोड़कर उबासी ली।

उठकर चारपाई पर आया और उसमें सिकुड़ कर लेट गया।

दीवट बुझ चुका था।

सफेद धुँए की हलकी-सी टेढ़ी-मेढ़ी रेखा ऊपर को उठ रही थी।

सर्दी उसकी रगों में समाती जा रही थी। वह सिकुड़ा जा रहा था। सिकुड़ते-सिकुड़ते वह गठरी बन गया, फिर भी उसकी रगें नहीं गरमाईं। सर्दी की वजह से वे जैसे वर्फ बन गई थीं, जिसे गर्म होना आता ही नहीं।

जबड़ों में कंपन भर गया था। बाग में लगे फूलों के पौधे जैसे सुबह की हवा की झोंकों से हिलते हैं, उसी तरह उसके जबड़े भी हिल रहे थे। लेकिन दोनों के कंपन में कितना अंतर था! पौदे हिलते हैं तो उनमें मस्ती भरती है, उन्माद होता है, और उसके जबड़े हिलते हैं तो मन में टीस उठती है, विवशता करवटें लेने लगती है। हँसता है, तो दूसरा रोता है। एक मुस्कुराता है, तो दूसरा कराहता है।

जबड़ों का हिलना धीरे-धीरे बढ़ रहा था और उसके साथ-साथ उसके दाँतों का आपस मे टकराना भी। दाँतों को दबाकर वह उनके

लड़ने और जबड़े को हिलने से रोकने की कोशिश करता, पर ऐसी कोशिश, जो कोशिश कि सीमा से कभी भी आगे नहीं बढ़ पाती। और तब वह कोशिश करना छोड़ देता। उसके जबड़े हिलते रहते और दाँत रह-रहकर बजते रहते।

बाहर मौत का-सा सन्नाटा छाया था। उस समय कब्रिस्तान में भी कुछ जीवन होगा; पर यहाँ, उसके आस-पास जरा-सा भी जीवन नहीं। बस केवल सन्नाटा, खामोशी, मौत की-सी, कभी न टूटनेवाली सी।

उसकी पलकें सर्द होकर भारी पड गईं और थोड़ी देर बाद उसकी पुतलियाँ उसके नीचे बन्द हो गईं।

आँखें बन्द तो हो गईं, पर उसे नींद नहीं आयी। वह जागता रहा न चाहते हुए भी। वह सो जाना चाहता था ताकि सर्दी की सर्द पीड़ा से बच सके। नींद मे आदमी को कोई पीड़ा नहीं रहती। वह सब कुछ भूल जाता है। भूल जाता है कि उसकी जिन्दगी दुःख और पीड़ा की वजह से छलनी हो गई है और अब उसको समाप्ति में तनिक भी देर नहीं। भूल जाता है कि आज तो किसी तरह बीत गया पर कल उसे फिर संघर्ष करना है, जीने के लिए।

उसकी आँखें बन्द रहीं, पर वह जागता रहा। जागता रहा और सोचता रहा कि आखिर ऐसे कब तक चलेगा? कब तक वह इस प्रकार जीवित रहने के लिए लड़ता रहेगा? कब तक जिन्दगी के अभाव उसपर चोट करते रहेंगे? कब तक इन चोटों को वह चुपचाप खाता रहेगा? कब तक अपनी लालसाओं और कामनाओं को दबाता रहेगा? और आखिर कब तक?

कब तक?

उसका जवाब उसके पास नहीं है। यह नहीं कि इस प्रश्न का जवाब पाने की उसने कोशिश न की हो। की, पर अपनी हर कोशिशों की तरह इस कोशिश मे भी असफल रहा।

जब से उसने होश सँभाला है, तब से अब तक किसी भी दिन, क्षण भर के लिए भी उसे सफलता नहीं मिली। हर जगह हार, हर समय निराशा।

और अब वह इसका अभ्यस्त हो चुका है। फिर भी कभी-कभी अत्यन्त अस्त व्यस्त हो उठता है और फिर वही पुराना प्रश्न आँखों के सामने झूलने लगता है—आखिर यह सब कब तक ?

तभी नीरवता की छाती मरकरी कारने चीर कर रख दी। अपनी चारपाई की बगलवाली खिड़की को हाथ बढ़ाकर मोहन ने जरा-सा खोल दिया। देखा, उसकी कोठरी के सामने वाली कोठी के फाटक के पास एक कार रुक गई है और उसमें से दो मूर्तियाँ उतर कर सूनी सड़क पर खड़ी हैं।

ड्राईवर कार को गैरेज में रखने के लिए बढ़ा ले गया।

उन दो मूर्तियों में से एक को तो वह जानता है, पर दूसरी को नहीं, जो सलवार पहने है, जिसके नाजुक हाथों में नाजुक-सा बैग है, जिसका सिर खुला हुआ है और जिसका महीन दुपट्टा लहरा रहा है।

जिसको वह जानता है, वह इस कोठी का मालिक है। उसकी पत्नी को मरे लगभग दो वर्ष बीत गए हैं। उसने अपनी दूसरी शादी नहीं की है, क्योंकि अब वह इसकी जरूरत नहीं समझता। महीने की हर पहिली तारीख को वह एक नई लड़की लाता है, महीने भर उसके साथ खेलता है और महीने की आखिरी तारीख को उसे छोड़ देता है।

पिछले दो वर्षों से वह इस क्रम को देखता आ रहा है। कभी भी जरा-सा व्यतिक्रम नहीं पड़ा इसमें। और आज जो इसके साथ दूसरी मूर्ति कार में से उतरी है, वह भी इसी क्रम की एक बिन्दु है। और बिन्दुओं की तरह यह बिन्दु भी महीने भर तक चक्कर काटता रहेगा और फिर महीने की आखिरी तारीख को इस बिन्दु का स्थान कोई नया बिन्दु ले लेगा।

मोहन के होठों पर मुस्कान ऐंठ कर रह गई। एक आदमी वह है और सड़क पर उस युवती का हाथ अपने हाथों में लिए खड़ा हुआ वह भी एक आदमी ही है। पर कितना अंतर है दोनों में। उतना ही अंतर जितना उस आदमी की कोठी और उसकी कोठरी में है।

एक वह है जो ठीक से भोजन भी नहीं खा पाता, सर्दियों से बचने के लिए कपड़ों का प्रबन्ध नहीं कर पाता और एक वह भी है जो हर महीने अपने मनोरंजन के लिए, अपनी वासना-तृप्ति के लिए नई-नई लड़कियों को बदलता रहता है।

और फिर उसका मन विद्रोह कर उठता है—आखिर ऐसा क्यों? ऐसा कब तक चलेगा? कब तक चलता रहेगा? कब तक कुछ लोग एड़ियाँ रगड़-रगड़ कर जीते रहेंगे और कुछ लोग• कब्र में पाँव लटक जाने पर भी ऐश करते रहेंगे, गुलछर्रे उड़ाते रहेंगे?

सड़क पर खड़ी दोनों मूर्तियाँ, सीढ़ियों पर से होकर कोठी के अन्दर चली गईं और उसने भी अपनी खिड़की बन्द कर ली।

रात सर्दी की वजह से काँप रही थी।

२

सीढ़ियों पर से होकर दोनों मूर्तियाँ अन्दर के बड़े दर्वाजे के पास खड़ी हो गईं।

सर्दी को वजह से अँधेरा और गहरा हो गया था। अँधेरे में कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा था। केवल चार आँखें चमक रही थीं, दो कंजी और दो काली।

कजी आँखवाले ने हाथ बढ़ा कर अंदाज से 'कालाबटन' दबाया। दरवाजे के उस पार किसी कमरे मे घण्टी घनघना उठी।

काली आँखवाली की ओर घूमकर कजी आँख वाले ने कहा—"आज बला की सर्दी है। इतना गर्म कपड़ा पहने रहने पर भी बदन काँपा जा रहा है।"

अँधेरे मे काली आँख वाली के दाँतों की पक्तियाँ चमक उठीं, जैसे वह मुस्कुरा उठी हो। बोली—"तुम तो गर्म सूट के ऊपर चेस्टर भी पहने हुए हो, फिर भी तुम्हें सर्दी लग रही है? आश्चर्य है!"

अपना सर घुमाकर वह कई क्षणों तक उसे देखता रहा, फिर बोला—"आश्चर्य क्यों करती हो? गलत तो कह नहीं रहा हूँ। क्या तुम्हें सर्दी नहीं लग रही है?"

"नहीं! हालाँ कि मैं तुमसे कम कपड़े पहने हूँ!" वह बोली।

वह हँस पड़ा।

काली आँखवाली को लगा कि जैसे वह उसकी बात का विश्वास नहीं कर रहा है, तभी तो हँस पड़ा।

बोली—"लगता है तुमने मेरी बातों को झूठ समझा।"

वह बोला—"और चाहे तुम्हारी सभी बातों का विश्वास कर लूँ, पर इस बात का नहीं करूँगा कि तुम्हें सर्दी नहीं लग रही है। तुम तो उस जाति की हो जो सच को झूठ और झूठ को सच बनाना जानती है।"

वह हँसी। पर इस बार उसके दाँतों की पंक्तियाँ नहीं चमकीं। बोली—"न करो विश्वास तुम्हारी मरजी!"

वह कुछ बोलने ही जा रहा था कि उसने अन्दर से दरवाजे की ओर आती पदचाप सुनी, इसलिए चुप रहा।

दरवाजे के खुलते ही उन दोनों के चारों ओर लिपटा अन्धकार भाग खड़ा हुआ।

दोनों अन्दर आ गए।

और जब नौकर ने दरवाजा बन्द कर दिया तब वह रूखे स्वर में बोला—"इतनी देर क्यों लगा दी दरवाजा खोलने में?"

"बच्चे की तबीयत खराब है सरकार। उसी के पास बैठा-बैठा सो गया था, इसलिए देर हो गई!" नौकर ने सहमे हुए स्वर में कहा।

"तुम्हारे बच्चे की तबियत खराब होने का यह मतलब तो नहीं है कि तुम अपना काम भूल जाओ और मैं सर्दी मे घण्टों बाहर खड़ा रहा करूँ।" वह बोला।

नौकर की पलकें उठीं और फिर झुक गईं। धीरे से बोला—"अब ऐसी गलती नहीं होगी सरकार!"

"अच्छा जाओ।" उसने कहा, लेकिन नौकर के जाने के पहले ही फिर बोल उठा—"मेरा कमरा ठीक कर दिया है न?"

"जी हाँ!"

"तब जाओ, और देखो अभी सो न जाना। शायद किसी चीज़ की जरूरत पड़े!"—उसने कहा।

"जो हुक्म सरकार!"—कह, नौकर चला गया।

उसके चले जाने के बाद काली आँखवाली ने कहा—"तुम्हारा

नौकर तो काफी फरमावरदार दीखता है रामनाथ, और काफी कटीला भी!"

उसने तिरछी निगाहों से उसकी ओर देखा, जरा-सा मुस्कुराया, फिर बोला—"मुझे तो अब तुम्हारे ऊपर सन्देह होने लगा, बेला!"

वह मुस्कुरायी और मुस्कुराते हुए ही बोली—"सन्देह? क्या मतलब है तुम्हारा?"

"तुम्हारा मन मेरे नौकर पर आ गया है! ..." कह व्यंग भरी मुस्कान मुस्का पड़ा रामनाथ।

मन में बेला ने कहा—उस जवान पर न दिल आएगा तो क्या तुम्हारे जैसे पिलपिले शरीर वाले पर। पर मन की बातें मन ही में रहती हैं, बाहर नहीं आतीं और जो बाहर आती हैं, वे मन की नहीं रहतीं।

मुस्कुरा कर बोली—"पढ़ा था कि वह भी मेरी ही कौम के लोग होते हैं, पर आज देख लिया कि जो पढ़ा था वह गलत था। वह भी केवल औरतें ही नहीं, मर्द भी होते हैं!"

अपनी बात समाप्त करते-करते अपनी काली-काली आँखों को इस शोखी से नचाया कि रामनाथ का मन चञ्चल हो उठा। वह मुस्कुरा पड़ा। बेला भी मन ही मन मुस्कुरायी। उसने जो सोचा था, वही हुआ। उसकी आँखों की जरा-सी शोखी ने रामनाथ के मन में उठ आए सन्देह को दूर कर दिया था।

बेला ने अपना दाँया हाथ रामनाथ की ओर बढ़ा दिया। उसने उसको पकड़ कर अपनी मुट्ठी में दबा लिया और मुस्कुराती हुई कनखियों से उसकी ओर देखा।

बेला रामनाथ जैसे आदमियों को, उनकी आदतों को अच्छी तरह जानती है। जानती है कि इन्हें अपने होंठो की मुस्कान और आँखों के इशारों पर कठपुतली की तरह नचाया जा सकता है, गरीबों के खून से भरी इनकी तिजोरियों को खाली किया जा सकता है।

वह केवल जानती ही नहीं, वैसा करती भी है। रामनाथ समझता है कि रुपए के बल पर वह उसे यहाँ तक ले आया है और जब उसकी इच्छा होगी यहाँ से फिर भेज देगा, पर वह नहीं जानता कि बेला उनमें से नहीं है। जो थोड़े से रुपयों के लिए खिंची चली आती हैं और महीने के अन्त में टूटी चप्पल की तरह निकाल दी जाती हैं। शुरू में उसके साथ भी ऐसा ही हुआ था। दूसरों की कमाई पर जीनेवाले ये जीवित शव हफ्ते दो हफ्ते उसे अपने पास रखते, फिर उसकी ओर से यूँ आँख मोड़ लेते जैसे उनका उससे कभी वास्ता ही न पड़ा हो। एक नहीं, कई बार उसके साथ ऐसा हुआ और तब उसने सोचा कि यदि वह अपने आपको इसी तरह लुटती देती रहेगी तो एक दिन उसका अस्तित्व ही नहीं रह जायेगा, वह मिट जायेगी और ऐसी मिटेगी जैसे बहते पानी पर उँगलियों से बना दी गईं लकीरें मिट जाती हैं।

यदि आदमी हमेशा खर्च ही करता रहे, तो एक दिन उसकी दशा भिखारियों से भी बुरी हो जायगी। उसी तरह यदि कोई केवल लुटता ही रहे तो उसका मिट जाना अवश्यम्भावी है। लुटने वाले का अस्तित्व तो तभी बना रह सकता है, जब वह स्वयं भी लूटे। 'बैलेन्स आफ़ पावर' तभी बना रह सकता है।

और बेला के दिमाग़ में यह बात जिस दिन से आयी, उस दिन से उसने भी लूटना शुरू किया। जितना वह लुटती, उससे अधिक वह लूटती। इसलिए वह शान से जिन्दा है और जब तक चाहेगी, शान से जिन्दा रहेगी।

और रामनाथ व रामनाथ की बिरादरी के लोग समझते हैं कि बेला को भी वे अन्य औरतों की तरह जब तक चाहेंगे चूसेंगे और जब उसमें रत्तिक भी रस नहीं रह जायेगा, तब उसे नाबदान में फेंक देंगे, पर वे यह नहीं जानते कि जिसे वे लूट रहे हैं, वह भी उन्हें लूट रही है, पर इतनी होशियारी से कि किसी को पता भी नहीं चल रहा है

और यही वजह है कि इतना लुटने पर भी वह अभी तक नाबदान में नहीं फेंकी गई। ऐसा करने को कोई सोच भी नहीं सकता और जहाँ उसे जरा-सा भी सन्देह होता, वह चिड़ियों की तरह फुर्र से उड़कर उनकी पहुँच से दूर चली जाती।

रामनाथ उसकी ओर लोलुप दृष्टि से देख रहा था। विचारों के अन्धकार में से निकलने पर उसने तिरछी निगाहों से उसे देखा। देखा और देखकर मुस्कुरा पड़ी।

"अन्दर कमरे में चलो न। यहाँ कब तक खड़ी रहोगी?" रामनाथ ने कहा।

बेला ने उसे देखा। समझ गई कि उसके मुँह में पानी भरा आ रहा है, जिसे छिपाने के लिए वह पान की पीक की तरह चुपचाप निगलता जा रहा है।

मुस्कुराती हुई आवाज में वह बोली—"चलिए!"

और रामनाथ बेला की दाहिनी हथेली को अपनी बाईं हथेली में लिए हुए अन्दर आया।

अन्दर आते ही बेला की दृष्टि कमरे भर में नाच उठी। छोटा-सा सजा-सजाया कमरा। कमरे की नीली दीवालें दरवाजे के ऊपर लगे 'मरकरी लैम्प' की नीली रोशनी के कारण, चाँदनी की चादर ओढ़कर बेहोश हो गयी झील के किनारों की तरह लग रही थी।

दरवाजे से बायीं ओर एक बड़ी-सी पलंग। पलंग पर मुलायम-मुलायम-सा गद्दा। गद्दे पर मलाई के रंग की बगैर शिकनवाली चादर। पलंग के सिरे की ओर दो बड़े-बड़े रेशमी तकिए।

पलंग के सिरहाने छोटी-सी तीन पैरों वाली मेज और उस पर एक कीमती रेडियो। पलंग के ठीक दूसरी ओर श्रृङ्गार मेज, जिस पर श्रृङ्गार करने के सभी प्रसाधन मौजूद थे।

वेला को लगा कि रामनाथ में दुनियाँ भर की बुराइयाँ अवश्य है, पर उसका मन औरों से अधिक सुरुचिपूर्ण है।

अब तक वह बहुत से सेठों, महाजनों, कारखानेदारों के यहाँ रह चुकी है। उनका दिल जितना गन्दा रहता है, उतना क्या उससे भी अधिक गन्दा उनका रहन-सहन होता है। ऐसे लोगों से वह आवश्यकता से अधिक नफरत करती है।

"कैसा कमरा है यह वेला ?" रामनाथ ने पूछा।

"बहुत ही सुन्दर !" ...

"मेरा भी यही ख्याल है" रामनाथ ने कहा—"और अब तो मुझे विश्वास हो गया कि शैल इसे अवश्य पसन्द करेगी।"

वेला को लगा जैसे उसके कानों में कोई गर्म चीज़ प्रवेश कर गई है। बोल उठी—"शैल ? कौन शैल ?"

रामनाथ हँस पड़ा—"अब बोलो, वह भी कौन होता है, स्त्री या पुरुष ? अरे रानी, शैल मेरी छोटी बहन है। कल वह लखनऊ से आ रही है और अब यहीं रहेगी ! "

वेला कुछ बोल नहीं सकी।

रामनाथ मुस्कुराया। बोला—"इसमें शर्माने की कौन-सी बात है, जो तुम एकदम खामोश हो गईं अरे गलती तो सभी से होती है और फिर इस गलती में तुम्हारा तो कोई दोष नहीं। औरतों के खून का हर क़तरा इस गलती का शिकार और दोषी है।"

क्षणभर साँस लेकर उसने फिर कहा—"आज तो हम यहाँ रहेंगे ही पर कल से हम अपनी नई कोठी में रहेंगे।"

"नई कोठी ?"

"हाँ, नई कोठी, जो इसी महीने सिविल लाइन्स में बनकर तैयार हुई है।" रामनाथ ने कहा।

वेला चुप रही।

कपड़े उतारते हुए रामनाथ ने कहा—"अगर चाहो तो बगलवाली खिड़की खोल लो ।"

"तुम्हें अगर सर्दी लग जायेगी तो ?…" बेला ने ऊपरी मन से कहा ।

"मैं 'हीटर' लगा लूँगा …।" रामनाथ ने कहा ।

और बेला ने हाथ बढ़ा कर खिड़की खोल दी । सर्द हवा का तेज झोंका अन्दर आया और वह सिहर उठी ।

झोंका जब गुजर गया, तब उसने बाहर देखा । सड़क सर्दी से ठिठुर रही थी । सामने की कोठरी सर्दी के कारण काँप रही थी, सिसक रही थी ।

३

पहाड़ियों की ओट में उषा ने अपना घूँघट उघारा। रजनी शर्मायी-शर्मायी-सी अपने चेहरे को अपने काले आँचल से छिपाये पहाड़ियों की गहरी खोह में छिप कर सिसकियाँ भरने लगी।

खिड़की की दरार में से होकर उषा की किरणें मोहन की चारपाई के इर्द-गिर्द नाचने लगीं। नाचने लगीं और नाच नाच कर उसकी बर्फ बन गई, रगों में गर्मी भरने लगीं।

और जब उसका जम-सा गया रक्त फिर धमनियों में दौड़ने लगा, तो उसने अपनी पलकें खोलीं, पैर फैलाए और एक अँगड़ाई ली। शरीर की सारी रगें चटख उठीं।

रगें गरमा तो अवश्य उठी थीं, पर सर्दी अब भी उनमें समायी हुई थी। उठ कर उसने झूला बन गई, चारपाई को खड़ा कर दिया और जमीन पर कागज़ों के पास पड़े दीवट को देखा कि शायद उसमें थोड़ा-सा तेल बचा हो, जिसे अपने बदन पर मलकर वह अपने को काँपने से बचा सके।

पर दीवट सूखा पड़ा था। उसमें पड़ी बत्ती राख हो गई थी और तब उसे याद आया कि तेल समाप्त हो जाने की ही वजह से वह उठकर चारपाई पर आ गया था, नहीं तो शायद रात भर जागता रहता, जागता रहता, और काँपता रहता और लिखता रहता।

मन में शून्य की-सी उदासी भर गई।

पैरों पर पड़ती किरणों की गर्मी बढ़ती जा रही थी। खिड़की खोल कर वह वहीं ज़मीन पर बैठ गया। किरणें उसके शरीर को स्नान कराने लगीं।

हाथ, पैर और सीने-को अपनी हथेलियों से रगड़कर उसने अपने शरीर में छिपी सर्दी को भी भगा दिया।

और जब सारी रगें गरमा गईं, तब उसने रात की लिखी पाण्डुलिपि को क्रम से लगा कर रख दिया। दीवट में राख हो गई बत्ती को निकाल कर काले हो चले बेडौल से ताखे में रख दिया। जमीन पर बिछे बोरे के टुकड़े को झार कर चारपाई पर लटका दिया और वहीं एक कोने में पड़े टूटे से झाड़ू से उसने कमरा साफ किया और कूड़ा उठा कर बाहर पटरी पर लगे कूड़े के ढेर में फेंक आया।

हाथों, चेहरे और उलझे हुए बालों पर गर्द की पतली-सी पर्त जम जम गई। अलगनी पर टँगी हरी-सी रुमाल से मुँह पोंछ कर उसे कन्धे पर रख लिया और पैर में टूट-सी चली ढाई रुपये वाली चप्पल डाल कर बाहर निकल आया।

दरवाजा बन्द कर अभी उसमें ताला लगा ही रहा था कि उधर से गुज़रता हुआ दूधवाला उसे देख कर रुक गया।

उसके पास आ उसने कहा—"कहो बाबू, पैसों का कुछ इंतजाम हुआ? बहुत दिन हो गए।"

मोहन ने घूम कर उसकी ओर देखा। देखा, देखकर सोचा कि यह दूधवाला ठीक ही कह रहा है। सचमुच बहुत दिन हो गए। दूधवाले जैसी स्थिति के लोगों के लिए तीन महीना बहुत होता है। तीन महीने पहले वह जब वह बीमार पड़ा था, तब इसी दूधवाले ने उसे दस दिन दूध पिलाया था। अगर किसी और को उसने पिलाया होता, तो अब तक उसे पैसे मिल गए होते, किन्तु वह कईबार वादा करने पर भी उसका पैसा चाह कर भी नहीं अदा कर पाता था।

बहुतों के पैसे उस पर चाहिएँ, पर उनकी तरह वह नगा नहीं हो जाता, हरवी नहीं बन जाता, दरिद्रों का-सा व्यवहार नहीं करता और इसी-लिए उसे इसने शर्म भी लगती है।

धीरे से बोला—"हाँ भाई, हो तो जरूर गए बहुत दिन। थोड़ा-सा सब्र और करो। बहुत जल्द ही तुम्हारे पैसे दे दूँगा ..।"

"जरा जल्दी करना बाबू। जानते तो हो ही कि हमारा यही आसरा है। अगर इसी तरह दस जगह पैसे रुक जायें, तो हमें भी भूखों मरना पड़े ...!" कह, दूधवाला चला गया।

मोहन अनुभव करता है कि दूधवाले ने बिलकुल सच कहा है। दो रुपये से रोजगार करनेवाले के अगर रुपये-डेढ़-रुपये उधार में रुक जायँ तो उसकी दूकान ही बन्द होने की नौबत आ जाएगी।

सोचा कि बनारस से इस बार जो रुपये मिलेंगे, उसमें से उससे पहले वह इसके तीन रुपये साढे पाँच आने देगा, उसके बाद दूसरों का।

ताला बन्द कर वह बस्ती के आगे छोटे से कच्चे तालाब की ओर निकल गया। लगभग इसी समय वह रोज उधर ही निकल जाता है और लगभग घंटे भर बाद निपट-नहा कर वापस आ जाता है।

जिस कोठरी में वह रहता है, उसके तीन चार कोठरियों की मालकिन आधे कच्चे और आधे पक्के मकान में रहती है। मालकिन के मकान में पाखाना भी है और पाइप भी। पहले मालकिन की इजाज़त से वह वहाँ निपट-नहा लेता था, पर जब से उसके बौड़म से लड़के की पत्नी आयी है, उसका वहाँ जाना बन्द हो गया है। थोड़े दिन तक तो उसे थोड़ी-सी असुविधा अवश्य हुई, पर अब वह इसका अभ्यस्त हो गया है।

मालकिन के मकान के पास आते ही उसके पाँव तेजी से चलने लगे। वह डर रहा था कि यदि मालकिन ने उसे देख लिया तो ज़मीन और आसमान के सारे कुलाबे एक कर देगी। पिछले छः महीनों से वह कोठरी का किराया नहीं दे पाया है, जिसकी वजह से लगभग रोज ही दो चार बातें सुननी पड़ती हैं, और कभी-कभी वे बातें गन्दी गालियों में भी बदल जाती हैं। वह सुनता है और चुप रह जाता है।

और चुप रहने के अलावा वह कर भी क्या सकता है। जिसके पास पैसा नहीं है, उसे ठोकर और गालियाँ नहीं मिलेंगी तो क्या आशी-

वाद मिलेगा ? गनीमत यही है कि उसे केवल गालियाँ ही मिलती हैं। इस देश में जाने ऐसे कितने बिना पैसे वाले होंगे जो गालियों के साथ साथ मौत भी पाते हैं।

वह तेज़ी से दरवाजे के सामने से निकल गया। उस समय संभवतः मालकिन बाहर नहीं थीं, नहीं तो वह इतनी आसानी से उधर से गुजरने न पाता।

दरवाज़े से आगे निकल जाने पर उसने सन्तोष और छुटकारे की साँस ली। अगर इस समय मालकिन मिल जाती तो उसकी बातों से उसका दिमाग इतना खराब हो जाता कि वह दिन भर प्रयत्न करने पर भी शायद ही एकाध पृष्ठ लिख पाता। जो वह नहीं चाहता। वह चाहता है कि दो दिनों में वह कम से कम चालीस-पैंतालीस पृष्ठ और लिख ले। इतना लिख लेने पर उसका उपन्यास समाप्त हो जायगा, जिसके समाप्त होने पर ही उसे पैसे मिल सकेंगे और तभी वह अपने ऊपर हो गए कर्जों को अदा कर सकेगा। इन कर्जों को जिनकी वजह से उसकी नाक में दम है, उसे गालियाँ सुनने को मिलती हैं, पग-पग पर उसका अपमान होता है, उसका रास्ता चलना दूभर-सा हो गया है।

बस्ती से आगे निकल आने पर शुद्ध एवं शीतल वायु ने उसके मुख का स्पर्श किया। उसके बदन में झुरझुरी-सी उठ आयी।

थिरक-थिरक कर चलती हवा उसके बालों से अठखेलियाँ करने लगी। कभी उसके बालों की जड़ों में पहुँच कर उसके सिर को गुदगुदाने लगती थी, कभी परिहास में उसके बालों की एक लट को उसके उन्नत मस्तक पर बिखरा देती थी, पर बालों के रूठ जाने के डर के कारण तत्क्षण ही उस लट को फिर वहाँ से हटा देती थी।

मोहन अब टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डी पर आ गया था, जिसके अगल-बगल के छोटे-छोटे खेतों में चने और मटर की लेटी हुई लताओं से शबनम लिपटी पड़ी थी। ऐसा लगता था मानों सदियों से बिछुड़े प्रेमी

और प्रेमिका अनायास ही मिल गए हैं और फिर से विछोह हो जाने के डर की वजह से एक दूसरे में लीन हो जाना चाहते हैं।

मोहन के मन और तन की सारी क्लान्ति दूर हो गई। उसके होंठ गुनगुना उठे।

चने और मटर की लतायें पीछे छुट गईं। अब वेरों और उसके बाद अमरूदों का बाग आ गया था। हरी-हरी पत्तियों के बीच लटकती हुई कुछ हरी कुछ सफेद, कुछ पीली और कुछ लाल, वेरें बड़ी भली लग रही थीं।

पत्तियों के बीच छिपी गिलहरियाँ बड़े मौज से पकी हुई वेरों को कुतर-कुतर कर खा रही थी। चोरों की तरह उन्हें छिपकर खाते देखकर मोहन मुस्करा पड़ा, जो जरा-सा खटका होते ही भाग जाने को तैयार थीं।

वेरों की बगल में ही अमरूदों का बाग था। बाग में उस समय फटे कुर्ते पहने और लँगोटी लगाए तीन-चार छोटे-छोटे बच्चे थे। सर्दी की वजह से उनकी दाढ़ी काँप रही थी, फिर भी वे घूम-घूम कर बाग पर मँडराते तोतों को भगा रहे थे। बीच-बीच में वे जमीन पर गिरे अमरूदों को उठा-उठा कर खाते भी जाते थे।

मोहन का मन भर आया। अर्थ-पिशाचों की कृपा के कारण देश के ये नौनिहाल जो अवसर पाने पर क्या नहीं हो सकते ते, आज इन बागों में सर्दियों से ठिठुरटे हुए तोतों को उड़ा रहे हैं। कल जब ये बड़े हो जायेंगे तब सिर पर टोकरी धरे दो रोटिया के लिए मारे-मारे फिरेंगे। वह भी कभी मिलेगी और कभी नही। उस समय क्या उन्हें यह याद रहेगा कि वे भी इंसान हैं? उस समय क्या वे यह सोच सकेंगे कि उनके साथ अन्याय हुआ है, अन्याय हो रहा है? उस समय क्या वे अर्थपिचाशों के इस सामाजिक अन्याय का विरोध करने के लिए समय निकाल सकेंगे? दो रोटियों की माया में फँसा इन्सान इस ओर कभी भी नहीं सकेगा, कभी भी नहीं।

और अगर उन्हें सोचने का अवसर मिल जाय तो समाजिक ढाँचा ही न बदल जाय। फिर तो न कोई गरीब रहकर जाय, न कोई अमीर, न कोई शोषक रहे और न कोई शोषित। सब बराबर हो जाँय। देश की जमीन, आसमान और इन दोनों के बीच जमा दौलत पर सब का समान अधिकार हो जाय।

लेकिन ऐसा होने क्यों लगा ? मोहन जानता है, जानता है और समझता है कि अर्थ-पिशाच लोगों को सोचने और समझने का अवरसर ही नहीं देंगे, क्योंकि वे भी जानते और समझते हैं कि उन्हें जहाँ जरा-सा अवसर मिला कि धर्म और ईश्वर के नाम पर चूसते रहने का जो सुनहरा जाल उन लोगों ने बनाया है, वह उनके देखते-देखते टूट जायगा और तब उन्हें भी महलों से निकल कर, गुलगुले गद्दों को छोड़-कर, पटरियों पर सोना पड़गा। पट्रस भोजनों को छोड़ कर सूखी रोटी और नमक से पेट भरना पड़ेगा, रेशम के कपड़ों की जगह मोटे कपड़ों से अपना शरीर ढँकना पड़ेगा, रोटी और कपड़ा पाने के लिए चिल-चिलाती धूप, मूसलाधार मेंह और सिसकती सर्दी मे काम करना पड़ेगा।

पर कब तक ? कब तक उन्हें सोचने और समझने का अवसर नहीं मिलेगा ? कब तक वे धर्म और ईश्वर के नाम पर लुटते रहेंगे ? कब तक पैसों पर बिकी सरकार उनके अन्तर को कुचल-कुचल कर गुलाम बनाती रहेगी ? आखिर कब तक ?

आज नहीं तो कल नहीं तो परसों अन्याय-शोपण के ये बादल छँट ही जायेंगे। उन्हें छँटना ही पड़ेगा। और तब जब नए आसमान पर लाल-लाल नया सूरज निकलेगा, तब न लूटनेवाला रह जायगा और न कोई लुटनेवाला, न कोई अभाव से तड़प-तड़प कर मरेगा और न कोई अभाव न होने से फूले शव की तरह जियेगा।

अपनी आशा से चमकती आँखें उसने ऊपर उठायीं। आसमान लाल हो चला था। लाल-लाल सूरज अपना सिर धीरे-धीरे ऊपर उठा रहा था।

४

मोहन जब नहाकर वापस आया तो देखा कि उसकी कोठरी के सामने की कोठी के आगे वही मरकरी कार खड़ी है और उसमें से कोठीवाला एक स्वप्न-बाला के साथ उतर रहा है।

कल सर्दी से काँपती रात को वह जिस युवती को अपनी वासनाओं के खिलवाड़ के लिए ले आया था, वह यही है क्या? लेकिन रात को तो वह सलवार वगैरह पहने थी और यह इस समय चाँदनी के रंग की साड़ी पहने हुए है, जिसमें सितारे जड़े हुए हैं, जो आकाश के सितारों से कम नहीं चमक रहे हैं।

अपने दरवाजे के पास खड़ा हो वह उसी की ओर देखता रह गया। उसे लगा, जैसे उसके सभी उपन्यासों की नायिकाओं का सौन्दर्य उसने चुरा लिया है, तभी तो वह उसकी हर नायिकाओं से भी सुन्दर लग रही है, उस नायिकाओं से जिनका उसने स्वयं निर्माण किया है, जिनमें उसने अपने हृदय के सारे सौन्दर्य को खो दिया है।

उसकी आँखें झंपना भूल गईं। मन ही मन उसने कोठीवाले के सौन्दर्य की परख को सराहना की। वह स्वर्ग लोक से अप्सरा को पकड़ लाया था। इतना मदिर, इतना मादक सौन्दर्य तो धरती पर शायद ही मिले!

लेकिन तत्क्षण ही उसके मन को झटका-सा लगा। सौन्दर्य की देवी वह है, इसमें सन्देह नहीं, पर उसका सौन्दर्य कलंकित है। उसमें से पाप और वासना की बू आ रही है। यदि ऐसी बात न होती तो पाप की यह सजीव मूर्ति कोठीवाले के पास क्यों आती? कोठीवाला तो उसी

को अपने यहाँ लाता है जो उसके पैसों के लिए अपने रूप और शरीर को उसके चरणों में बिखरा दे।

पिछले दो वर्षों से वह यही देख रहा है। जैसे मिलिटरी कैम्प में भूखे सिपाहियों की वासना को शान्त करने के लिए 'वैकाई' से युवतियाँ जाती थीं, वैसे ही इस कोठीवाले के पास हर महीने युवतियाँ आती हैं। उन्हीं युवतियों की तरह यह भी आई है। महीने भर यहाँ रुकेगी, लुटेगी और महीने की आखिरी तारीख को नोटों के एकाध बण्डल को लेकर यहाँ से किसी नये नीड़ की खोज में चली जायेगी। यह क्रम बराबर चलता रहेगा और तब तक चलता रहेगा जब तक कि उसका सौन्दर्य मुरझा नहीं जायेगा, उसके गुलाबी गालों पर काली-काली, भूरी-भूरी झुर्रियाँ, रसीले होटों पर पपड़ी पड़ नहीं जाएगी, मांसल शरीर सूख नहीं जायगा और रक्त की उष्णता बर्फ नहीं बन जायगी।

उस समय इन्हें कोई दो टके को भी नहीं पूछेगा और तब इनकी दशा मोरी में रेंगने और रेंग-रेंग कर मरनेवाले कीड़ों से भी बुरी हो जायेगी। मुरझाए हुए फूलों की ओर कोई नहीं देखता। खँडहर बन गए महलों को कोई आबाद नहीं करता।

उनके कार से उतरने के बाद जब ढेरों सा सामान—होल्डाल, ट्रङ्क अटैचियाँ—उतरने लगा, तब मोहन को थोड़ा-सा आश्चर्य हुआ। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। अबतक जितनी भी आयी थीं, खाली हाथ आयी थीं और खाली हाथ गयी थीं। (उनके बैग में या ब्लाउज के नीचे नोटों का बंडल, हो सकता है, रहा हो) फिर इसके साथ इतना सामान क्यों?

क्या यह इस कोठीवाले की कोई रिश्तेदार है? या किसी मित्र की बहन या लड़की? या इसने इस स्वप्नलोक की अनिंद्य सुन्दरी से शादी कर ली है!

शादी? एक ही के पल्लू में बँध जाना? नहीं, यह तो हो ही नहीं सकता। शेर के मुँह में जब खून लग जाता है, तब वह फलों पर नहीं

रह सकता। जिसे हर रोज नया कपड़ा पहनने की आदत पड़ गई हो, वह एक ही कपड़े पर कैसे गुजारा कर सकेगा ? जो नई-नई जवानियों का स्वाद लेने का अभ्यस्त वन चुका हो, वह एक ही जवानी की गोद में कैसे पड़ा रह सकता है ?

फिर ?

और मोहन ने इस बार उसे और गौर से देखा जो कार के दरवाजे के सहारे खड़ी थी। उसे ऐसा लगा जैसे गुलाव को शबनम ने गुदगुदा कर जगा दिया हो। कहीं भी जरा-सा धब्बा नहीं, बदनुमा दाग़ नहीं, काली रेखा नहीं। आँखों में लालसा या वासना की छाया भी नहीं। होठों का प्यार अभी तक किसी ने चुराया नहीं। शरीर अभी तक किसी पुरुष के बन्धनों में बँधा नहीं।

हाँ, आधुनिक फैशन की वह शिकार अवश्य है। गालों पर पाउडर की हलकी सी परत चढ़ी हुई है, वैसी ही परत जैसी सुबह उसके हाथों और चेहरे पर चढ़ी थी। होंठ लिपस्टिक का जरा सा स्पर्श पाकर और भी रसीले हो उठे हैं। आँखें बड़ी और लम्बी अवश्य थीं, पर उतनी नहीं जितनी काजल के प्रयोग से इस समय लग रही है। बाँए हाथ में सुनहरी रिस्टवाच भी है और दाहिने हाथ में हाथी के दाँत की एक सफेद चूड़ी। हाथ की उँगलियों के नाखून लम्बे और नुकीले हैं, जिन-पर लाल पॉलिश चमक रही है। साड़ी के अन्दर से नीले रंग का रेशमी ब्लाउज झिलमिला रहा है, मानों चाँदनी के नीचे सागर का नीला पानी लहरें मार रहा हो। गोरे-गोरे पैरों में पड़ी बदामी रंग की रेशमी चप्पल अपने भाग्य को सराह रही है।

"चलो, अन्दर चलें शैल" मोहन ने सुना, कोठीवाला उस युवती से कह रहा था—"नौकर तो है ही। सामान रख जायगा"

तो इसका नाम शैल है, सोचा मोहन ने। पर यह तो अधूरा नाम लगता है। या तो उसका नाम शैलबाला होगा, या शैलकुमारी। नाम

कुछ फीका-फीका सा है। जितना लावण्य स्वयं उसमें है, उतना तो इस नाम से नहीं झलकता। शैल! सुनने में कुछ रूखा-रूखा-सा लगता है, रगड़ता है, चुभता है। शैल न होकर इसका कुछ और ही नाम होना चाहिए था, कुछ स्वप्निल, कुछ मादक, कुछ मदिर, कुछ मधुर। शैल नाम रखनेवालों ने तो पार्वती के बारे में सोचकर इसका नाम रक्खा होगा। यह ठीक है कि पार्वती का नाम गिरिजा भी था, पर पार्वती और इस शैल में अन्तर है, बहुत अन्तर। यदि पार्वती का सौन्दर्य वास्तव में इतना स्वप्निल, इतना मादक, इतना मदिर होता तो शंकर को भाँग व धतूरा खाने की क्या आवश्यकता थी? लोगों का कहना है कि सर्प का विष बहुत ही मादक होता और जब नशा करने-वालों को और चीजों का नशा फीका-फीका-सा लगने लगता है, तब वे नागिन के विष का प्रयोग करते हैं। स्त्री का सौन्दर्य भी एक नशा है। यदि इस नशे में तेजी नहीं होती, तभी आदमी दूसरे नशों का प्रयोग करता है। पार्वती का सौन्दर्य इतना मादक नहीं था कि शंकर को विषपान कर सकने से रोकता। फिर पार्वती और शैल में क्या समानता?

शैल कुछ बोली नहीं। दरवाजे पर से हाथ उठाकर रामनाथ के साथ वह जाने ही वाली थी कि अपनी ही ओर भूला-भूला-सा, खोया-खोया-सा, बिसरा-बिसरा-सा, भटका-भटका-सा देखते देखकर उसके पाँव ठिठक गए। आँखों में क्षण भर के लिए उलझन पैदा हुई। पलकें पल भर के लिए बोझिल हो उठीं। होंठों पर बिल्कुल हलकी सी लाज में भींगी मुस्कान की रेखा तेजी से दौड़ गई, इतनी तेजी से कि न स्वयं शैल को पता चला और न देखने वाले मोहन को।

यह सब केवल क्षण भर के लिए हुआ, केवल क्षण भर के लिए। रामनाथ के पैर आगे बढ़े और उसके पीछे-पीछे उसके पाँव भी चल पड़े। मोहन के मन को चोट लगी। सौन्दर्य आज खिला हुआ कोठी

के अन्दर जा रहा है, पर कल जब वहाँ से बाहर निकलेगा तो मुरझाया हुआ, मरा-मरा-सा, लुटा-लुटा-सा।

उसका जी हुआ कि वह दौड़कर कोठी में घुस जाय और उस कोठी-वाले का गला पकड़ कर इतनी जोर से दबाए कि वह फिर साँस न ले सके और मासूम शैल को उस पाप की कोठरी में से बाहर निकाल लावे।

उसकी रगों में तनाव आया, हाथों की मुट्ठियाँ बँध गई और उँग-लियाँ उसके गले को दबाने के लिए मरोड़ खाने लगीं।

शैल और रामनाथ कोठी के अन्दर पहुँच गए थे।

मोहन ने अपनी मुट्ठियों की ओर देखा और मन ही मन अपने ऊपर खीझ उठा। आखिर वह शैल के बारे में इतना क्यों परेशान हो रहा है? न वह उसे जानता है और न वह उसे जानती है, फिर वह उसे बचाने के लिए इतना बेचैन क्यों? हो सकता है शैल उसकी बहन हो, या नई बीबी हो या रखैल ही हो। तो उसे क्या?

यह तो दुनियाँ है और दुनियाँ में बहुत कुछ होता है। यहाँ पैसों पर औरतों का रूप और यौवन, इन्सानों की जिन्दगी और इमान रोज खरीदा और बेचा जाता है। वह किस-किसके लिए परेशान होगा? किस-किसको बचाता फिरेगा?

और फिर एक दो को बचाने से होता भी क्या है? यहाँ तो लाखों, करोड़ों रोज लुट रहे हैं, बिक रहे हैं। उसे अगर बचाना है तो सबको बचाना है और यह तब तक नहीं होगा जब तक कि यह व्यवस्था, यह समाज और धर्म का यह रूप रहेगा। इन तीनों में आमूल परिवर्तन करना होगा। इनको जड़ से मिटा कर इनकी जगह नई व्यवस्था, नया समाज, और नया धर्म बनाना होगा। तभी यह लूट, यह बिक्री बन्द हो सकती है, वैसे नहीं।

सामान अन्दर पहुँच चुका था। शोफर कार को गैरेज में रखने के लिए बढ़ा ले गया।

गरीबों के प्राणों की नींव पर बनी उस कोठी पर आखिरी नजर डाल, ताला खोल वह अन्दर आ गया।

भींगी रूमाल को कोने से लटकती हाकी स्टिक पर लटका दिया, जो अब भी कभी कभी उसे यूनिवर्सिटी के दिनों की याद दिला देती है, जहाँ से उसे आर्थिक कष्ट के कारण भागना पड़ा था। नहीं तो वह भी आज कहीं अच्छी जगह होता, इस कोठरी में घुटन भरा जीवन न बिताता होता।

और तब उसकी आँखें भर-भर आती हैं। दिल तड़प उठता है, लेकिन शीघ्र ही वह अपने को जब्त कर लेता है। अच्छा हुआ जो उसने यूनिवर्सिटी की डिग्री नहीं ली, नहीं तो आज उसके अन्तर में की तरह जो आग जल रही है, वह ठंढी हो जाती और वह भी लाखों गुलामों आई० ए० एस०, पी० सी० यस०, आई० पी० यस० का बिल्ला लगाए कहीं कलक्टर, डिप्टी कलक्टर, पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट बना लोगों पर अत्याचार करता होता, जोकों की तरह गरीबों का खून चूसता होता।

यह ठीक है कि आज उसके पास पैसा नहीं है। जिनका पैसा उस पर बाकी है वे उसे गालियाँ देते हैं। फिर भी वह सुखी है, सन्तुष्ट है और वह केवल इसलिए कि वह गुलाम नहीं हो गया है, मर नहीं गया है। जिन्दा है, वह उसके अन्तर में सदियों से पलती विद्रोह की आग जिन्दा है।

उसके होंठ मुस्करा कर गुनगुना उठे—'जिन्दा हूँ इस तरह '

कोने से हट कर वह ताखे के पास आया। कंघी उठाकर टूटे शीशे में अपनी सूरत देखी और देखकर उसे यूनवर्सिटी के दिनों की एक बात याद आ गई और वह मुस्करा उठा।

यूनिवर्सिटी में उसका एक सहपाठी था—अमरेश। किसी रियासत का अकेला वारिस। हर समय औरतों की तरह सँवरा रहता। क्लास छोड़-छोड़ कर वह उस मोड़ पर पेड़ के तने के सहारे खड़ा रहता, जिधर से लड़कियाँ गुजरतीं और उन्हें देख-देख कर लम्बी साँसें भरा करता, जैसे दमे से पीड़ित हो।

उससे परिचय हो जाने पर उसका भी थोड़ा बहुत मनोरंजन हो जाता था। एक दिन जब लड़कियाँ उसकी बगल से गुजरने लगीं, तो अमरेश ने उसकी ठुड्डी पकड़ कर बड़े ही अन्दाज से कहा—"जालिम बनानेवाले ने मेरी भी ऐसी काँटेमार सूरत नहीं बनायी, नहीं तो ये परियाँ जो आज मेरी ओर देखती भी नहीं, मेरे कदमों पर लोटती रहतीं ...।"

जानेवालियों के पैर जरा-सा ठिठके, सिर घूमे। तिरछी नजर से उन लोगों ने अमरेश के साथ-साथ उसे भी देखा और खिलखिला कर आगे बढ़ गईं।

आज उस घटना के साथ-साथ उसे अमरेश भी याद हो आया। जाने कहाँ होगा वह इस समय ? हो सकता है यूनिवर्सिटी छोड़कर वह अपनी रियासत चला गया हो और किसी राजकुमारी से शादी कर सुख की जिन्दगी व्यतीत कर रहा हो, या अब भी यूनिवर्सिटी में पड़ा गुल-छर्रे उड़ा रहा हो।

शीशे में उसने अपना चेहरा फिर देखा। बाल बिल्कुल रूखे थे। उनमें कई दिनों से तेल नहीं पड़ा था। शीशे पर से नजर हटाकर उसने तेल की शीशी पर डाली, जिस पर गर्द की पतली-सी पर्त जम चुकी थी, जो इस बात को चीख-चीख कर कह रही थी कि शीशी खाली है, उसमें एक बूंद भी तेल नहीं है।

मोहन की आँखों में घनीभूत उदासी भर उठी। उसे लगा कि उसके जीवन में आज जो अभाव है, वह अमर है, कभी नहीं मरेगा। उसे जिन्दगी भर एक-एक पैसे की चीज़ के लिए तरसना पड़ेगा, ललचना पड़ेगा और मरने पर शायद क़फन भी न मिल सकेगा।

और उसकी आँखों में फिर वही पुराना प्रश्न सजीव हो उठता है। आखिर ऐसा क्यों ? क्या उसमें इतनी मानसिक योग्यता या शारीरिक-शक्ति नहीं है, जितना देश के सारे धन पर गुँडरी मार कर बैठे इन अज-गरों में है ? ऐसा तो नहीं है। फिर यह असमानता क्यों ? एक ग़रीब

और दूसरा अमीर ? कुछ लोग भूखे और नंगे क्यों हैं ? यह अप्राकृतिक असमानता क्यों और कब तक ? आखिर कब तक ? कब तक ही चलता रहेगा ? कब तक यहाँ ब्राह्मण और शूद्र, अमीर और गरीब पलते रहेंगे, बसते रहेंगे ? आखिर कब तक ?

मोहन को ऐसा लगता कि यह प्रश्न सदियों से उसके मन में पल रहा है, लेकिन अभी तक वह इसका कोई उत्तर नहीं दे पाया है, बल्कि उसमें और भी उलझ गया है, जब-जब उसने इसका उत्तर खोजने की कोशिश की है, इस उलझन से वह परेशान अवश्य हो गया है, पर हार नहीं मानी है उसने। उसका विश्वास है कि इस बार इसी जन्म में वह इसका उत्तर दे देगा। इसका उत्तर खोजने के लिए अब उसे दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ेगा, और न वह लेना ही चाहता है। बार-बार जन्म लेते-लेते और इस दुनियाँ के दुःख सहते-सहते वह थक-सा गया है, इसलिए इस बार इस प्रश्न का उत्तर देकर वह इस आवागमन से मुक्ति पा जाना चाहता है।

विचारों की दुनियाँ से वह बाहर तब आया, जब उसके हाथ से कंघी गिर पड़ी। झुक कर उसने उसे उठा लिया और सोचा कि बिना तेल लगाए ही वह कंघी कर ले, क्योंकि लोदई बाब उसे तेल देंगे नहीं और इस समय उसकी जेब में चार रुपये साढ़े दस आने हैं, जिसमें उसे दो दिन खाना खाना है और बनारस तक का दो रुपया दो आने किराया भी देना है।

मन मार कर सूखे ही बालों में कंघी कर वह चुपचाप बोरे पर बैठ गया और रात में लिखी पाण्डुलिपि को सरसरी निगाह से पढने लगा।

उसे पढ लेने के बाद अपने बाएँ हाथ की कुहनी जमीन पर रख मेंढकों की तरह बैठ गया और उसकी कलम कागज़ पर तेजी से दौड़ने लगी।

५

लिखते लिखते जब उसकी उँगलियाँ, कलाई और कमर दुखने लगी, तब उसने कलम नीचे रख दी और जेब से बीड़ी निकालने के लिए हाथ डाला।

जेब में केवल आधी बीड़ी थी। निकाल कर उसे देखा और विद्रूप भरी मुस्कान उसके होठों पर फैल गई।

आज दिन भर उसे लिखना है—सोचा उसने—और उसके पास केवल आधी बीड़ी है और जेब में कुल चार रुपया साढ़े दस आने। कैसे काम चलेगा उसका? दो दिन तक तो पैसे उसके पास आते नहीं और वह इन पैसों से दो दिन कैसे गुजारा कर सकेगा? इन्हीं पैसे में उसे कपड़े साफ करने हैं, बाल बनवाना है, खाना खाना है, बीड़ी पीना है और फिर बनारस भी जाना है। कैसे हो सकेगा यह सब?

अगर होटलवाला उसे खिला दे, और लोदई साव उसे बीड़ी और साबुन दे दे, तब तो उसका काम आसानी से चल जाए, पर काहे को होटल वाला दो दो महीने का पैसा बाकी होने पर भी खिलाने लगा और काहे को लोदई साव बीड़ी और साबुन देकर सात रुपया साढे सात आने को और बढ़ाने लगा? होटलवाला खिला भी दे और लोदई साव रुपये दो रुपये का सामान और दे दें, यदि इन लोगों को विश्वास हो जाय कि इनके पैसे डूबेंगे नहीं, शीघ्र ही मिल जायेंगे। पर वे तो सोचते हैं कि अब तक के पैसे तो डूब ही रहे हैं, फिर पैसे क्यों डुबोए जायँ।

और वह उन्हें विश्वास भी नहीं दिला सकता कि दो तीन-दिन

बाद बनारस से लौटते ही वह उन सबके पैसे चुकता कर देगा, किसी की एक पाई भी नहीं रोकेगा। ठीक भी है। वे विश्वास करें भी तो कैसे? कई बार उसने वादा किया, पर उसका हर वादा, वादा ही रहा। वादे की सीमा से आगे न बढ़ सका, फिर कैसे करे कोई उसका विश्वास?

बीड़ी बुझ गई थी। उसने एक दो बार जोरों से कश खींचा, पर बुझी चीज कभी जल सकी है! मोहन ने उसे फिर जलाया, पर दो तीन कश खींचने के बाद ही उसकी उँगलियाँ और होंठ जलने लगे और तब एक बार बड़ी ही करुण दृष्टि से बीड़ी के उस छोटे से टुकड़े की ओर देखकर उसे दरवाजे के बाहर फेंक दिया, जहाँ वह किसी राहगीर के पैरों के नीचे कुचला जा कर अपना अस्तित्व बिल्कुल खो बैठेगा।

और उसी बीड़ी के टुकडे की तरह वह भी तो कुचला जा रहा है, कुचला जा रहा है और अपना अस्तित्व खोता जा रहा है। न ठीक से उसे भोजन मिल रहा है, और न ठीक से वस्त्र। हर नई सुबह को वह अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति खोता है, जबकि वैसी ही हर सुबह को समाज के दरिद्रों, अर्थ पिचासों की शक्ति बढती है। यह सब कुछ वैसे ही हो रहा है, जैसे किसी ऐसे रोगी को—जिसके शरीर में खून नहीं रह गया है और जो मरने की अवस्था में पहुँच गया है—किसी स्वस्थ आदमी के शरीर का खून दिया जाय और वह रोगी स्वस्थ होता जाय और स्वस्थ रोगी।

यदि उसे जीवित रहना है—सोचा मोहन ने—तो उसे बीड़ी के उस टुकड़े की तरह चुपचाप नहीं कुचले जाना होगा। उसे अपनी रक्षा का प्रबन्ध करना होगा।

लेकिन कैसे? आज वही अपनी रक्षा कर सकता है, जीवित रह सकता है, जिनके पास पैसा है और उनके पास पैसा नहीं है। और जिसके पास नहीं है, वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता, जीवित नहीं रह सकता। उसे मर जाना पडेगा। उसे मार डाला जायगा। चाहकर भी,

प्रयत्न करने पर भी वह अपने को जीवित नहीं रख सकता, कभी भी नहीं।

तब!

इस बड़े से 'तब' में उसका मस्तिष्क उलझने ही जा रहा था, कि दरवाजे पर पोस्टमैन ने आवाज दी—"बाबू जी, चिट्ठियाँ ले लीजिए।"

करवट होकर मोहन ने देखा कि मिलिटरी और सिविलियन के बीच के ढग का बना खाकी कोट पहने, सर पर पन्द्रहवीं सदी की नाव की-खाकी कपड़े की तिरछी टोपी लगाए, पिंडलियों तक की धोती पहने, नगे पाँव पोस्टमैन हाथों में दो-तीन चिट्ठियाँ लिए खड़ा है।

उठ कर वह दरवाजे तक आया। पोस्टमैन ने हाथ बढ़ाकर चिट्ठियाँ दीं और सलाम कर आगे बढ़ गया।

उसकी निगाहें चिट्ठियाँ पढ़ने ही जा रही थीं कि सामने की खुली खिड़की पर खड़ी शैल पर अटक गईं। खिड़की में खड़ी वह शायद अपने पड़ोस को देख रही थी, जो शायद उसे अजीब-अजीब सा लग रहा था। शहर के अन्तिम छोर पर की दो-तीन सौ आदमियों की इस बस्ती में केवल उसी की कोठी पूंजीवाद की प्रतीक थी। शेष सब बुजुर्ग क्लास के मन की तरह रो रहे थे।

मोहन भूल गया कि उसकी हाथों में चिट्ठियाँ हैं, जिन्हें अभी-अभी पोस्टमैन दे गया है और जिन्हें उसे पढ़ना भी है। भूल गया कि उसे अभी लिखना भी है, ताकि कल तक पुस्तक पूरी हो जाय, जिसे लेकर उसे पैसों के लिए जाना है। बस, सब कुछ भूल कर वह शैल को एक टक देखता रहा, निहारता रहा।

शैल ने उसे नहीं देखा था। वह इधर-उधर देख रही थी और जब उसकी निगाह मोहन पर पड़ी तो उसने फट्ट से खिड़की बन्द कर ली।

मोहन के मन को चोट-सी लगी। क्षणभर के लिए वह उदास हो उठा, परन्तु दूसरे ही क्षण वह उसकी ओर घूर-घूर कर क्यों देख रहा

था ? सुबह भी और इस समय भी। अब तक तो उसने किसी भी युवती को इस तरह नहीं देखा था, फिर इस शैल को ही वह क्यों देख रहा था? आखिर क्यों ? क्या उसके मन में कोई चोर घुस गया गया है ? न, नहीं। फिर क्या बात है ? उसे देखकर वह सब कुछ, यहाँ तक कि अपने आप को क्यों भूल जाता है ?

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। यहाँ तक कि उस समय भी जब वह यूनिवर्सिटी मे पढ़ रहा था और उसकी हालत आज से कुछ अच्छी भी थी और अमरेश के शब्दों में उसकी सूरत काँटेमार थी। वहाँ एक से एक लड़कियाँ थी, जिन्हें कम से कम अमरेश की सहायता मे वह आसानी से पा सकता था। फिर भी उसने उनकी ओर कभी भी भर-नजर नहीं देखा और इसीलिए अमरेश और उसके पीछे कुत्तों की तरह फिरनेवाले सफेदपोश लड़के उसका मजाक उड़ाते थे, उसे मीठा की सज्ञा देते थे।

फिर आज वह शैल की तरफ क्यों बार-बार देख रहा है ? क्यों उसके मन में उसे हमेशा देखने की इच्छा बलवती होती जा रही है ? क्यों ? आखिर क्यों ?

और जब उसका मन कोई जबाब नहीं दे पाया, तब वह कुछ खीझ कर अन्दर चला आया और बोरे पर बैठकर थोड़ी देर तक निरर्थक ही चिट्ठियों को उलटता-पलटता रहा, जैसे उन चिट्ठियों को पढ़ने का ससका मन ही नहीं हो रहा था।

लेकिन जब चिट्ठियाँ आई हैं, तो उसे पढ़ना ही पढ़ेगा। एक लिफाफा आसाम से आया था। खोलकर पढ़ा। प्रारभ में उसकी थोड़ी-सी प्रशंसा के बाद लिखा था 'आपकी इस रचना मे मैंने एक कमी पायी। मेरे विचार से वह है किसी भी पात्र का निवास-स्थान न होना मैंने बहुत उपन्यास पढे हैं, पर कोई भी उपन्यास पात्रों के निवास-स्थान से वंचित नहीं मिला है '।

मोहन मुस्कुरा पड़ा। हिन्दी का पाठक आज भी चन्द्रकान्ता के युग में रह रहा है। अन्य भाषा-भाषियों की तरह उसका मानसिक स्तर अभी उँचा नहीं हो पाया है। वह आज भी पढ़ना चाहता है कि एक था राजा, वह अमुक देश में राज्य करता था। उसके दो राजकुमार थे और एक राजकुमारी। जब राजकुमारी बड़ी हुई तो अमुक देश के राजकुमार ने उसके सौन्दर्य की प्रशंसा यात्रियों से सुनी और उस पर मोहित हो गया और उसे छल-बल से अपने राज्य मे भगा ले गया और रानी बनाकर सुख-पूर्वक राज्य करने लगा।

दूसरा पत्र मध्य-प्रदेश के किसी जागीरदार के पुत्र का था। गालियों के बाद उसमें लिखा था—" तुम जनता को धर्म, ईश्वर, जमीन्दारों और जागीरदारों के विरुद्ध भड़का रहे हो लेकिन तुम अपने गन्दे इरादों में कभी सफल नहीं होगे। हिन्दुस्तान में जब तक हिन्दू हैं, धर्म और ईश्वर के साथ-साथ जमींन्दार और जागीरदार भी रहेंगे। हाँ, तुम और तुम्हारे जैसे नास्तिक और देश-द्रोही नहीं रहेंगे। तुम लोगों को गोली से उड़ा दिया जायेगा ' ।"

मोहन हँस पड़ा। मन ही मन बुदबुदाया—'मरने के पहले कुत्ता खूब भौंकता है।'

तीसरा पत्र उसके प्रकाशक का था। प्रारम्भिक शिष्टाचार के पश्चात् उसमें लिखा था—' आपकी इस रचना पर मैं '' से अधिक पुरस्कार नहीं दे सकता। यदि आपको स्वीकार हो तो आप शेष पाण्डुलिपि भेज दें। अन्यथा अपनी पाडुलिपि वापस ले लें '।"

क्रोध मोहन के चेहरे पर ऐंठ कर रह गया। ऐसी ऐंठन जो क्रोध पैदा करनेवाले पात्र की अनुपस्थिति में होती है।

उसने सोचा कि यह व्यक्ति उसकी मजबूरी से नाजायज फायदा उठाना चाह रहा है, हमेशा से उठाता आया है। मकड़ी ने जहाँ मक्खी को अपने जाले में फँसा देखा कि उसे घर दबोचा। उसकी भी

दशा मकड़ी के जाले में फँस गई मजबूर मक्खी की तरह है। पचास रुपये ऐडवान्स लेकर वह मजबूर हो गया है। इन्सान की जिन्दगियों से खेलनेवाला यह व्यक्ति अच्छी तरह जानता है कि वह पचास रुपये वापस देकर अपनी पाण्डुलिपि वापस नहीं ले सकता, इसलिए अपमान-जनक पारिश्रमिक पर भी वह रचना दे ही देगा।

और तब सहसा ही क्रोध की लौ झल्ल से उसकी आँखों में जल उठी। उसने सोचा कि वह अपने पास की पाण्डुलिपि को फाड़कर सड़क पर फेंक दे और प्रकाशक को लिख दे कि अपने ऐडवान्स के रुपए वह अपने पास पड़ी पाण्डुलिपि से वसूल कर ले। केवल सोचा ही नहीं, उसके हाथ उठ भी गए पाण्डुलिपि को पकड़ने के लिए। पूरी पाण्डुलिपि उसने उठा ली और फाड़ने को ही था कि कोठरी की मालकिन, लोदईसाव, दूधवाला, होटल के मैनेजर की सूरत उसकी आँखों में नाच उठी।

उसका हाँथ जरा सा काँपा। मुट्ठियाँ ढीली पड़ गईं और पाण्डु-लिपि नीचे गिरकर बिखर गई।

अपने निचले होंठ को उसने दाँतों से जोरो से दबा लिया, जैसे क्रोध को अन्दर ही अन्दर पीने का प्रयत्न कर रहा हो।

थोड़ी देर तक उसका मन क्रोध और पीड़ा से छटपटाता रहा। और जब थोड़ी देर बाद उसकी पीड़ा कुछ कम हुई तो उसने पाण्डु-लिपि को उठाकर देखा। कई क्षणों तक उसे अपलक निहारता रह गया, फिर लिखने के लिए बैठ गया। उस समय उसकी दशा ठीक उस औरत की तरह थी, जो लाख प्रयत्न करने पर गुन्डे से अपना सतीत्व न बचा पायी हो।

एक लाइन लिखने के बाद उसने अपनी कलम रोक ली। जिस ढंग से वह अभी तक लिखता आ रहा था यदि उस ढग से वह लिखे तो उपन्यास समाप्त करने के लिए अभी उसे लगभग पैंतालीस पृष्ठ और लिखने पड़ेंगे और अब जब उसे वादा किया गया पारिश्रमिक भी नहीं

मिल रहा है, तो वह क्यों और पैंतालिस पृष्ठ लिखे? क्यों न इस परिच्छेद में पाँच पृष्ठ और लिखकर सौ पृष्ठ पूरा करके उपन्यास को समाप्त कर दे? यही न होगा कि उपन्यास अधूरा लगेगा? लगता है तो लगा करे। बदनामी होती है, तो हुआ करे। कला और मान, उसके भूखे पेट में रोटी नहीं डाल देंगे, उसके नंगे शरीर को ढक नहीं देंगे, उसपर जिनका कर्ज है उसे पूरा नहीं कर देंगे। पैंतालिस पृष्ठों में जितनी कहानी वह लिखेगा, उसमें थोड़ा-सा और जोड़कर वह एक नया उपन्यास लिख लेगा, जिसका पारिश्रमिक उसकी कम से कम तीन महीने की आवश्यकतायें पूरी कर देगा। ऐसा करने से ही वह ईंट का जवाब पत्थर से दे सकेगा।

इस निश्चय पर पहुँचते ही उसकी आँखें जरा सी मुस्करायीं और उसने सन्तोष की साँस ली।

उसकी कलम परिच्छेद के साथ-साथ उपन्यास भी समाप्त करने के लिए दौड़ने लगी।

६

क्रोध के कारण शैल ने केवल खिड़की ही नहीं बन्द की, बल्कि सिटकिनी भी लगा दी। सिटकिनी लगा देने के बाद कई क्षणों तक वह खिड़की के पास ही खड़ी रही, मानों उसके पैर वहाँ से हट ही न रहे हों, फिर तेजी से आकर पलँग पर बैठ गई।

क्रोध के कारण उसका चेहरा तमतमा रहा था और उसकी साँस तेजी से चल रही थी, जिसकी वजह से साड़ी उसके कन्धे से खिसक कर नीचे गिर पड़ी। पर उसे जैसे इसका होश ही नहीं था।

पलँग पर भी उससे बैठा नहीं रह गया। उसे लगा कि जैसे मोहन की आँखें उसे अब भी घूर रही हैं और तब वह पलँग से उठकर कमरे के बीच में रक्खी आराम-कुर्सी पर लेट गई।

वहाँ भी उससे नहीं रहा गया। उसे ऐसा लगा रहा था, जैसे मोहन की नज़र उसके शरीर में काँटे की तरह चुभ रही है। और जब वह चुभन तेज़ हो जाती तो वह तिलमिला उठती।

वह समझ नहीं पा रही थी कि गुण्डा लगनेवाले उस युवक की नज़रें क्यों उसके अन्तर में पैठी जा रही थीं। 'ला कालेज' में उससे अधिक सभ्य, सुसंस्कृत और सुन्दर युवक उसे घूरते थे। इस बुरी तरह से कि यदि उनका वश चलता तो वे उसे अपनी आँखों की राह निगल जाते। उस समय तो वह इतना क्या कभी भी नहीं तिलमिलायी थी। जरा-सा भी क्रोध नहीं किया था उसने, बल्कि मन ही मन मुस्कुराया करती थी, इसलिए कि उसके रूप का लोहा सबको मानना पड़ रहा है।

फिर आज यह तिलमिलाहट क्यों ? क्रोध की भावना क्यों ? वह

देखता है तो देखा करे। उसका क्या बनता—बिगड़ता है इससे! उसकी नजर से भागना, इस तरह तिलमिलाना, क्रोध करना अपनी कमजोरी सिद्ध करना है। शेर की नज़र से अगर नज़र मिला दी जाय, तो शेर डर कर स्वयं ही भाग जायेगा और नहीं तो शेर उछलकर अपने पंजों में दबोच ही लेगा।

यह ख्याल आते ही वह सिहर-सी उठी। उसकी रगों में झुरझुरी-सी उठ आयी। तो क्या उसने खिड़की बन्द करके उस गुण्डे को प्रोत्साहन दिया है कि वह उसपर आक्रमण करे? क्या उसने हार मान ली है?

न, नहीं। कभी नहीं। वह उस जैसे गुण्डे से भला कभी हार मान सकती है? उससे जिसके पास सिर मे लगाने को तेल नहीं, पहनने को ठीक से कपड़ा नहीं, रहने को मकान नहीं। उससे वह हारेगी? वह, जो रामनाथ की अकेली बहन है, उस रामनाथ की जो लखपति और लड़ाई के ठेकों के कारण जो करोड़पति होने जा रहा है। उसके सामने उस भिखमंगे की वकअत ही क्या है, जो उस जैसों के टुकड़ों पर पलता है, उसकी बिरादरी के इशारों पर हँसता, मुस्कुराता, सोता, जीता और मरता है। झोंपड़ी कहीं महलों के आगे टिक सकी है? जमीन कभी आसमान को छू सकी है?

उसने खिड़की इसलिए बन्द की कि वह उससे, उस जैसों से घृणा करती है। खिड़की इसलिए बन्द की कि वह फिर इस ओर देखने का साहस न करे। झोंपड़ी में रहकर महलों का स्वप्न न देखे। भिखारी होकर राजा होने के दिवा-स्वप्न में न भूल जाय!

लेकिन उसके मन में, शरीर में अजीब-अजीब-सी चुभन क्यों? ऐसा लगता है जैसे उसकी आँखों में जादू है, सम्मोहन शक्ति है, जो आँखों की राह से होकर मन में उतर कर हलचल पैदा कर देती है, साथ ही अपने मन की भी करा लेती है।

आज सुबह ही उसे देखकर उसके होंठ मुस्कुरा उठे थे, उसकी

आँखों में लाज की ललाई बल खाने लगी थी। यदि उसने देखा होगा तो समझ गया होगा कि वह उसे प्यार करने लग गयी है। लगता तो कुछ ऐसा ही है, तभी तो इस समय भी वह घूर-घूर कर वह देख रहा था। उसे भ्रम हो गया है कि वह उसके प्यार के जाल में फँस गई है।

प्यार!

प्यार याद आते ही उसके होंठ अनायास ही हँस पड़े। प्यार, प्यार न हुआ कुंजड़ों की दुकान की सब्जी हो गई कि जिसने चाहा ले लिया। प्यार जैसे मजाक हो गया कि आँख मिली और दिल चला गया।

प्यार के भ्रम का यह रोग भगी बस्ती से लेकर यूनिवर्सिटियों तक ही नहीं, पार्लियामेन्ट तक भी पहुँच गया है। अपनी ओर देखनेवाले की ओर देखकर जहाँ कोई लड़की, किसी भी कारण से, जरा सी मुस्कुराई कि देखनेवालों को भ्रम हो गया कि उसे उनसे प्यार हो गया है। वह देखनेवाला चाहे गाजी भगी हो, मँगरू नाई हो, बुधुवा चमार हो, कमलेश बहादुर ग्रेजुएट हो, निगम प्रोफेसर हो, छबीलेलाल एम० एल० सी० हो, रसिकबिहारी लाल पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी हो या अलबेलेलाल मिनिस्टर हो। कोई भी हो, पर अपनी ओर देखकर मुस्कुरा पड़नेवाली लड़की को देखकर उसे प्यार का भ्रम अवश्य हो जायगा। जैसे दोपहर की चिलचिलाती धूप में बालू के मैदान को हिरण सरोवर समझ बैठता है।

और वह भी सम्भवतः इसी भ्रम का शिकार हुआ है। यह ठीक है कि उसने गुस्ताखी की है, अपनी औकातसे से आगे बढ़ने की कोशिश की है, फिर भी इतना उसे भी मानना पड़ेगा—और वह मानती भी है कि इसमें उस कुछ-कुछ शरीफ-से लगनेवाले गुण्डे का उतना दोष नहीं है। फूल के पास भौंरे आते ही हैं, ऊषा की ओर देखने की तबियत होती ही है, चाँद की ओर आँखें उठ ही जाती हैं। दीपक जले और शलभ न आयें, यह तो हो ही नहीं सकता। वह उसकी ओर देख रहा

थ, इसमें उसका भला क्या दोष ? यदि है भी किसी का, तो प्रकृति का। यदि प्रकृति उसे नारी न बनाती, (नारी के साथ-साथ उसे सुन्दर भी न बनाती) तो वह क़ाहे को उसकी ओर देखता।

किन्तु प्रकृति के साथ-साथ उसका भी तो थोड़ा-सा दोष है। आज सुबह ही तो उसे अपनी ओर देखकर उसके पाँव क्षणभर को ठिठक गये थे, आँखों में उलझन-सी पैदा हो गई थी, होंठों पर लाज से भींगी हलकी-सी मुस्कान दौड़ गई थी। उसकी ठिठकन, उलझन और मुस्कान क्या यह सिद्ध नहीं करते कि उसने भी वही अपराध किया है जो अभी-अभी उस युवक ने किया है, जिसके लिए वह उस पर झल्ला रही है, क्रोध कर रही है।

यह ख्याल आते ही शैल जरा-सी मुस्करा पड़ी और उसके मुस्कराने के साथ-साथ उसका क्रोध भी तिरोहित हो गया। न्यायाधीश भला अपराधी को कैसे और क्या दंड दे सकता है ! जब स्वयं उसने भी वही अपराध किया हो।

मुस्कराने के साथ-साथ उसके दिमाग में प्रश्न भी उठा कि आख़िर वह है कौन ! देखने में मन को वह अवश्य लगता है, पर पढ़ा-लिखा नहीं मालूम होता, कम से कम अपने कपड़ों से। और उसके कपड़ों से, उस कोठरी से जिसमें वह रहता है, यह भी पता चलता है कि उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है।

उसके मन में तब सहसा और अनायास ही सहानुभूति उमड़ आयी। क्या करता होगा ? कैसे खाता-पीता होगा ! कपड़े तो साफ-साफ बता रहे हैं कि इस काँपती सर्दी में भी उसके पास इतने कपड़े नहीं हैं कि वह ठिठुरने से अपने को बचा सके और जब वह ठीक से पहन नहीं पाता तो खाता क्या होगा ? पता नहीं दोनों समय उसे खाना मिलता भी है या नहीं।

उसकी आँखें दौड़कर बन्द खिड़की पर जा लगीं और उसे ऐसा

लगा कि जैसे वह अब भी अपने दरवाजे पर खड़ा, उसको उस खिड़की की ओर, अनिमेष दृष्टि से देख रहा है।

उसका जी हुआ कि वह दौड़कर खिड़की के पास जाय और खिड़की खोल दे और चिल्लाकर कहे कि वह उसके पास आकर उसे जी भर कर देख ले, जितना देखना चाहता है देख ले।

वह कुर्सी छोड़कर उठ खड़ी हुई। उसके पाँव खिड़की की ओर बढ़े भी, फिर सहसा ही रुक गए। सूरज निकलने से पहले दार्जिलिंग की पहाड़ियाँ जिस तरह भीने बादलों से ढँकी रहती हैं, उसी तरह वह भी लाज से ढँक-सी गई। गालों पर ललाई बल खाने लगी। कान का सिरा गर्म हो उठा और उसका वक्ष ओस में पड़े कपड़े की तरह भींग गया।

कई क्षणों तक वह वैसी ही अवस्था में खड़ी रही। फिर धीरे से आरामकुर्सी पर पुनः लेट-सी गई। साड़ी के आँचल से उसने अपने भींग ने गए वक्ष को लजाते-लजाते पोंछ लिया। आँखें थोड़ी देर तक कमरे मे घूमती रहीं, फिर सामने की खिड़की में से होकर बाहर आकाश पर जा लगीं, जहाँ पक्षियों का एक जोड़ा पंख पसारकर उड़ रहा था।

पक्षियों के उस जोड़े के साथ-साथ उसकी आँखें भी उड़ने लगीं और तबतक उड़ती रहीं जबतक कि वह जोड़ा उसकी आँखों से ओझल नहीं हो गया।

और जब उड़ान समाप्त हो गई तो वह सपनों में खो गई, ऐसे सपनों में जिन्हें पहली बार वह देख रही थी, जिनमे पहली बार वह खो रही थी।

सपनों में खो जाने के ही कारण बगल के कमरे से टेलीफोन की घण्टी की आती आवाज़ को वह सुन न सकी, जान न सकी। सपनों में खो जाने के बाद आदमी की सभी बाह्य इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। फिर कैसे सुनती, कैसे जानती।

लेकिन उसकी बाह्य इन्द्रियों को फिर जागने के लिए तैयार होना

पड़ा। जब नौकर ने उसके पास आकर कहा—"बीबी जी, फोन पर आपको मालिक बुला रहे हैं!"

शैल को ऐसा लगा जैसे मीलों दूर से कोई उससे कुछ कह रहा है। वह जरा-सी सगमगाई लेकिन उठी नहीं और न नौकर की ही ओर देखा।

नौकर की आँखें आश्चर्य से फैल गईं। यह उसके लिए नई बात थी। दिन में कोई नहीं सोता और कम से कम आँखें खोलकर।

ऐसी हालत तो हम ग़रीबों की होती है जब कभी पास में पैसा नहीं होता, घर में रोटी नहीं होती तथा पत्नी और बच्चे भूख के कारण सो जाते हैं। लेकिन बीबीजी को तो कोई कमी नहीं, कोई अभाव नहीं। फिर वह ऐसे क्यों खोई-खोई-सी है?

इस क्यों का उत्तर भला वह ग़रीब कैसे पाता?

टेलीफोन की घण्टी घनघना रही थी।

नौकर ने सोचा कि हाथ पकड़कर वह शैल को जगा दे। फिर सोचकर रुक गया कि यदि कहीं वह बुरा मान गई तो उसकी रोजी जाती रहेगी, और तब उसे, उसकी पत्नी को, बच्चे को भूखों मरना पड़ेगा।

क्षणभर तक वह वहीं खड़ा-खड़ा कुछ सोचता रहा, फिर जाकर फोन को उठा लाया, और बोला—"बीबी जी, फोन!"

और उसकी बात समाप्त होते-होते घंटी फिर जोरों में घनाघना उठी।

इस बार शैल की बाह्य इन्द्रियों को पूर्ण रूप से जागरूक होना पड़ा। उसने चौंककर नौकर की ओर देखा।

उसने कुछ कहा नहीं केवल फोन बढ़ा दिया।

"हैलो ..." फोन लेकर शैल ने पूछा।

उधर से रामनाथ की आवाज़ आयी "कौन, शैल?"

"पहले यह तो बताओ कि तू कर क्या रही थी, जो फोन पर नहीं

आयी ? तबियत कुछ खराब हो गई क्या ?" रामनाथ ने पूछा—"बड़ी देर से 'रिंग' कर रहा था।"

शैल ने नौकर की ओर देखा, फिर जरा-सा हँसकर बोली "तबीयत तो मेरी बिल्कुल ठीक है, भैया ! आप तो व्यर्थ में ही चिन्तित हो उठते हैं। हाँ, कहिए क्या काम है ?"

क्षणभर तक खामोश रहने के बाद रामनाथ ने कहा—"आज मैंने सुबोध एडवोकेट से तुम्हारे सम्बन्ध में बातें की थीं। वे तैयार हो गये हैं।"

शैल हँस पड़ी—"मैंने 'ला' प्रैक्टिस करने के लिये नहीं बल्कि जानकारी के लए पढ़ा है, भैया !"

रामनाथ ने कहा—"दिन रात अकेली बैठी रहने से तेरा जी क्या ऊब नहीं जायेगा, शैली ? और फिर अगर तू प्रैक्टिस करने लगेगी तो मुझे भी थोड़ी बहुत मदद मिल जाया करेगी।"

शैल फिर हँसी। बोली—"भैया, आप क्या सोचते हैं कि आपके 'इनकम-टैक्स' वगैरह के मुकदमें मैं मुफ्त में लड़ूँगी ? मैं तो पहले ही फ़ीस ले लूँगी।"

हँसी के साथ-साथ रामनाथ की आवाज़ भी आयी—"अरे, तुम अगर कहो तो तुम्हारे नाम बैंक में आज ही एक लाख रुपया जमा कर दूँ। पगली ?"

शैल की हँसी नहीं रुकी। बोली—"पर एक बात है भैया ! क्या आप सोचते हैं कि पुराने सरकारी वकीलों के मुकाबले में मैं आप के मुकदमे जीत सकूँगी ?"

रामनाथ ने कहा—"इसे तू नहीं, मैं जानता हूँ !"

शैल अपने भाई का मतलब नहीं समझ पायी। बोली—"मैं समझी नहीं, भैया !"

और रामनाथ उसे समझाता भी कैसे कि शैल जैसी खूबसूरत लड़-

कियों को देखकर वकील बहस करना और जज फैसला लिखना भूल जायेंगे और यदि कुछ कहेंगे या लिखेंगे भी तो उन्हीं के पक्ष में ?

बोला—"इसे तुम्हें समझने की जरूरत भी नहीं, शैल ! हाँ, तो मैं सुबोध से कह दूँ कि तुम कल से उनके पास जाया करोगी ।"

शैल ने कहा—"इतनी जल्दी भी क्या है, भैया । मैं सोचकर बताऊँगी ।"

रामनाथ ने कहा—"जैसी तुम्हारी मर्जी । मैं तुम पर कोई दबाव नहीं डालना चाहता । और हाँ देखो, मैं कुछ जरूरी काम से जा रहा हूँ, इसलिए शायद आज भी न आ सकूँ । तुम चिन्ता मत करना ।"

"बहुत अच्छा ।"—कह शैल ने फोन रख दिया ।

नौकर उसे लेकर बगलवाले कमरे की मेज पर रखकर, जब अन्दर जाने लगा, तो शैल ने उसे पुकारा—"ज़रा सुनना तो !"

नौकर ने मुड़कर शैल को देखा और उसके पास लौट आया ।

शैल ने पूछा—"हमारी कोठी के सामने की कोठरी में कौन रहता है?"

"हमारी कोठी के सामने की कोठरी में ? हाँ याद आया मोहनबाबू उसमें रहते हैं ।" नौकर ने कहा ।

मोहन !

नाम तो अच्छा है छोटा-सा, मधुर-सा, अपनापन लिए । यदि मोहन के आगे मन और जुड़ जाता तो और भी अच्छा होता—मनमोहन !

बोली—"मोहनबाबू ? किसी दफ्तर में काम करते हैं क्या वह ?"

"जी नहीं बीबीजी ! अगर काम ही करते होते, तो इतनी तकलीफ़ क्यों उठाते । न ठीक से खाना, न ठीक से पहनना, न ठीक से रहना ," नौकर के स्वर में दर्द था, जैसे मोहन और उसका रक्त एक ही हो—"मैंने, मेरी औरत ने उन्हें बहुतेरा समझाया कि बाबू नौकरी कर लो । इससे कम से कम दोनो वक्त खा तो सकोगे, पर उन्होंने कभी हमारी बात नहीं मानी । कहते हैं, नौकरी गुलामी है और गुलाम बनकर

जिन्दा रहने से आज़ाद रहकर भूखों मर जाना अच्छा है। क्या यह ठीक है, बीबी जी ?"

जी तो हुआ शैल का कि वह कह दे कि तुम्हारे मोहनबाबू ने जो कहा है वह सच है, बिल्कुल सच है। गुलामी की जिन्दगी से आज़ादी की मौत करोड़ गुनी अच्छी है, पर कह न सकी। जाने क्या सोच ले वह अपने में।

बोली—"यह तो अपना-अपना ख्याल है। तुम्हारे मोहनबाबू का कहना भी ठीक है और तुम्हारा सोचना भी।"

नौकर की समझ में यह बात नहीं आयी। सच तो एक ही बात हो सकती है, दोनों नही। दिन और रात तो साथ-साथ नहीं हो सकते। आग और पानी एक ही बर्तन में नहीं बने रह सकते। फिर बीबीजी कैसे कहती हैं ? यह तो मोहनबाबू से भी आगे बढ़ी हैं। क्या सभी पढ़े-लिखे लोग ऐसे ही होते हैं ?

उसने परेशान नज़रों से शैल की ओर देखा।

पर शैल ने जैसे उसकी परेशानी नहीं समझी। बोली—"जब तुम यह नहीं जानते कि तुम्हारे मोहनबाबू क्या करते हैं, तब तो तुम्हें यह भी नहीं मालूम होगा कि वे कैसे आदमी हैं !"

"दुनियाँ न जाने बीबी जी, पर मैं और मेरी औरत तो जानते हैं कि मोहन बाबू आदमी नही देवता हैं। जाने किस जन्म के कर्मों का वे फल भोग रहे हैं कि इस गन्दी-सी कोठरी में इस बुरी हालत में पड़े हैं। उन्हें तो किसी राजघराने में पैदा होना चाहिए था।" नौकर ने कहा।

शैल ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। यह तो बिल्कुल भक्त जान पड़ता है, मोहन का। भक्त ही नहीं, अन्ध भक्त। फिर भी इस अन्धी भक्ति के पीछे कोई जबर्दस्त कारण होगा, जिसने मोहन को उसकी आँखों में आदमी से देवता बना दिया है।

नौकर को लगा, जैसे शैल उसकी बातों पर विश्वास नहीं कर रहीं

है, इसलिए अपनी बात पर और अधिक जोर डालकर उसने कहा—"आज आपको मेरी बातों पर हो सकता है यकीन न आवे, पर कभी न कभी आपको यकीन करना ही पड़ेगा। हमारी कोठी के आसपास सभी गुण्डे बसते हैं, एक दूसरे को लूटकर खा जानेवाले, पर मोहन बाबू उन सब के बीच मे उसी तरह लगते हैं, जैसे कीचड़ में कमल पैदा हो गया हो। दानवों के बीच मे यदि देवता आ जाता है तो लोग उसे भी दानव ही समझने लगते हैं।"

पर क्या मोहन सचमुच देवता लगता है? देवों का-सा तेज तो उसके चेहरे पर नहीं। हाँ, आँखों में कुछ विचित्र-सा प्रकाश अवश्य है, जो देखनेवालों को बरबस अपनी ओर खींच लेता है।

हो सकता है उसमें देवोचित कोई गुण हो और अगर हो भी तो क्या हुआ? उसमे और मोहन में बहुत अन्तर है। वह चाँदी और सोने की ऊँची दीवार के पीछे सोने की जंजीरों में जकड़ दी गई है। वह न तो इस जंजीर को ही तोड़ सकती है और न उस दीवार को फाँद सकती है तथा न मोहन ही उस दीवार को फाँदकर इस पार उसे इन जंजीरों से मुक्ति दिलाने आ सकता है।

काश, ऐसा हो जाता!

पर दूसरे ही क्षण वह अपने पर खीझ उठी। यह क्या से क्या सोचने लगी—वह! कहाँ वह, कहाँ मोहन! दोनों की दुनियाँ अलग-अलग है, उन समानान्तर रेखाओं की तरह जो कभी नहीं मिल पातीं, नहीं मिल सकतीं।

और फिर वह मोहन के बारे में, मोहन की दुनियाँ के बारे में सोचे ही क्यों? न वह मोहन को जानती है और न मोहन उसे जानता है। और जब वह उसे जानती तक नहीं, फिर उसके बारे में सोचती क्यों है? क्यों? आखिर क्यों? उसे नहीं सोचना चाहिए। वह हिन्दू बाला

है और हिन्दू बालाओं को विवाह से पहले किसी पर-पुरुष के बारे में नहीं सोचना चाहिए।

हाँ, नहीं सोचना चाहिए, लेकिन यही सोचते सोचते उसे हँसी आ गई। आखिर इतना पुराना यह ख्याल आज उसके दिमाग में कैसे आ गया? आज कैसे वह सोच बैठी कि वह हिन्दू बाला है? वह पढ़ी-लिखी है। उसने सदैव पुराने विचारों का खंडन किया है और आज वह स्वयं उन विचारों का शिकार हो रही है। कैसी विडम्बना है!

मन ही, मन, बिना किसी कारण के हँसती हुई शैल को, नौकर दृष्टि ने कई क्षणों तक देखता रह गया और फिर चुपचाप धीरे-धीरे वहाँ से हट आया।

शैल अपने आप पर हँसती ही रही।

१

दिन डूबा, गर्मी गई,
रात हुई, सर्दी आई।

और रात की उमर के साथ-साथ सर्दी भी बढ़ती जा रही थी।

अपनी झूलेदार चारपाई में गठरी बनकर लेटा हुआ मोहन चुपचाप सर्दी से ठिठुरी-ठिठुरी आँखों से कभी दीवट की हिलती हुई लौ को देखता और कभी खिड़की के बाहर सूनी पड़ती जाती सड़क को।

उस सूनी सड़क की तरह उसकी जिन्दगी में अजीब सूनापन भरता जा रहा था और वह उसका कारण प्रयत्न करने पर भी नहीं समझ पा रहा था।

सड़क के सूनेपन से डरकर उसकी आँखें अन्दर चली आयीं और टेढ़ी-मेढ़ी दीवालों से टकराने लगीं, लेकिन वहाँ भी वैसा ही सूनापन था, कुछ अजीब-अजीब-सा।

आज शाम से उसका मन इसी लिए बड़ा बेचैन है। रह-रहकर तड़प उठता है, कराह उठता है, चीख उठता है और तब उसकी आँखें इधर-उधर किसी सहारे की तलाश में गिरने लगती हैं, पर पत्थर पर चोंच मारनेवाले बगुले की तरह चोट खाकर फिर वापस आ जाती हैं।

आज पहली बार उसने अनुभव किया कि उसके अन्तर में इतना सूनापन भर गया है कि वह उसे अन्दर ही अन्दर खाए जा रहा है। आज के पहले उसने कभी भी, क्षण भर के लिए भी ऐसा अनुभव नहीं किया था। सुन्दर से सुन्दर, जवान से जवान युवतियाँ—जिन्हें देखकर

लोगों के मुँह में पानी भर आता है—उसके पास से गुजरी हैं और वह उनके पास से गुजरा है, फिर भी उसके मनमें पल भर के लिए यह विचार कभी भी नहीं उठा कि वह रुककर उन्हें भर-निगाह देख ले और न यही कि उनमें से कोई उसकी बन जाए।

फिर आज वह किसी नारी का अभाव क्यों महसूस कर रहा है? उसका मन क्यों चाह रहा है कि इस समय उसके पास कोई नारी हो, जिसकी एक मुस्कान उसकी ज़िन्दगी में भर गई वीरानियों, तकलीफों और सन्नाटे को दूर कर देती। वह उसके सीने में सिमटी-सिमटी होती और वह उसके नागिन जैसे केशों से खेलता होता।

शाम को उपन्यास के अन्तिम परिच्छेद की अन्तिम पंक्ति जब वह लिख चुका, तब उसने सन्तोष और छुटकारे की साँस ली। पर वह सन्तोष और छुटकारा थोड़ी देर के लिए ही था। भूख से कुलबुलाती अंतड़ियों ने उसका बुरा हाल कर रक्खा था।

अँधेरा होने तक किसी तरह उसने अपने को रोके रक्खा और जब दुनियाँ अन्धेरे में डूब गई तो उसी अँधेरे में अपने को डुबोए, ताकि दुनियाँवालों की नजरें उपर न पड़ें, वह कोठरी से बाहर निकाला।

तकादेदारों की दुनियाँ से जब वह आगे निकल आया, तब उसने अपना सिर उठाया। दुनियाँ पर तारीकी जरूर छा गई थी, पर वह जाग रही थी।

सिनेमा के पास पहुँच कर थोड़ी देर तक वह रंग-बिरंगे पोस्टरों को देखता रहा, फिर आगे बढ़ गया।

आगे पटरी पर पकौड़ीवाला तेल की पकौड़ियाँ निकाल रहा था। वहीं, पकौड़ीवाले के पास ही में ज़मीन पर मोहन बैठ गया।

पकौड़ीवाले ने उसकी ओर आशा से देखा।

"एक छटाँक पकौड़ी दो," मोहन ने कहा—"और देखो लाल-लाल देना!"

"बिल्कुल लाल लाल बाबू जी !" कह, पकौड़ीवाले ने एक छटाँक पकौड़ियाँ तौलकर एक दोने में रखकर उसे दी।

"चटनी भी तो देना भाई !" मोहन ने कहा।

"दे रहा हूँ बाबू जी ! " पकौड़ीवाले ने कहा और अपनी बात समाप्त होते न होते उसने एक पत्ते में थोड़ी-सी चटनी और एक हरी मिर्च दी।

पकौड़ी खा लेने के बाद पास ही में बैठे चायवालों की ओर उसने देखा और पूछा—"कहो, भाई कैसी चाय है तुम्हारी ?"

"यह तो आप पीकर ही देख सकेंगे।"— चायवाले ने पक्के व्यवसायी की तरह कहा।

"तो फिर लाओ एक चुक्कड़।" —मोहन ने कहा।

कुल्हड़ में चाय भरकर, उसे चायवाले ने मोहन की ओर बढ़ा दिया। मोहन ने उसे लेकर जमीन पर रख दिया, क्योंकि वह जल रहा था।

चाय के चुक्कड़ की ओर उसकी दृष्टि उठकर पकौड़ीवाले पर गई जो एक घसियारिन को आधा पाव पकौड़ी तौलकर दे रहा था।

विद्रूप भरी मुस्कान उसके होंठो पर फैलकर रह गई। यह घसियारिन तो उससे अच्छी दशा में है। आधा पाव पकौड़ी खाकर और आधा सेर पानी पीकर वह अपना पेट भर लेगी, फिर उसे रात भर बिल्कुल भूख न लगेगी, जिसकी वजह से वह रात को सुख की नींद तो सो सकेगी।

और एक वह है जो आधापाव पकौड़ी भी खरीदकर खा नहीं सकता और अगर हिम्मत करके खाता भी है, तो उसका पेट नहीं भरता। घसियारिन की तरह अपने तन और मन की सारी थकान भूलकर वह सुख की नींद भी नहीं सो सकेगा, क्योंकि उस समय भी उसकी अँतड़ियाँ कुलबुलाती रहेंगी, उसका मन भूखा रहेगा।

ओह !

एक निश्वास उसके मुँह से निकल गई।

यह घसियारिन उससे बहुत ही अच्छी दशा में है। इसलिए अच्छी दशा में है कि उसके पास पैसे हैं या उसे किसी चीज़ का अभाव नहीं, बल्कि इसलिए कि अभावों को महसूस करने की ताकत उसमें नहीं है। वह नहीं सोच पाती कि इतना काम करने के बाद उसे केवल आधापाव पकौड़ी नहीं, कुछ और चाहिए जो उसकी पूरी भूख ठीक-ठीक तो मिटाये ही, उसे काम करने की शक्ति भी दे। उसे यह तार-तार हो चली, धोती नहीं चाहिए जिसकी वजह से उसे अपनी इज्ज़त को ढंकने के लिये अपनी हथेलियों का सहारा लेना पड़ता है।

लेकिन वह इस चीज़ को महसूस नहीं कर पाती, इसलिए वह सुखी है और वह चूँकि इन अभावों को महसूस करता है, इसलिए चाहकर भी नहीं सुखी हो पाता। वह जानता है और समझता है कि उसे छटाँक या आधापाव पकौड़ी, एक या दो चुक्कड़ चाय नहीं रोटी, चावल, दाल तरकारी, घी और दूध चाहिए। सर्दियों में गर्म कपड़ा और गर्मियों में महीन कपड़ा चाहिए। वह केवल महसूस करता है, उन अभावों की पूर्ति नहीं कर पाता (यह नहीं कि वह प्रयत्न नहीं करता), पर उसका प्रयत्न असफल हुआ है, होता है, इसलिए वह सुखी नहीं है।

यदि वह चाहता तो वह भी घसियारिन की श्रेणी में आ सकता था। कोठीवाले रामनाथ के नौकर और उसकी पत्नी की बात को मानकर यदि उसने किसी आफिस में क्लर्की कर ली होती, तो फाइलों के बंडल, अफसरों की घुड़कियाँ उसके अनुभव करने की शक्ति की हत्या कर देतीं और तब वह भी सुखी हो सकता था, एक कुर्ते और एक पैजामे से अपना दिन काट सकता था, छटाँक, आधा पाव पकौड़ियों से अपना पेट भर सकता था।

लेकिन उसने वैसा नहीं किया, इसलिए आज वह सुखी नहीं है और हो भी सकेगा या नहीं, वह नहीं जानता।

चाय पड़ी-पड़ी ठण्डी हो रही थी और वह विचारों की सरिता में बह रहा था।

चायवाले ने मुड़कर पैसे माँगने के लिए मोहन की ओर देखा और यह देखकर कि चाय अभी तक वैसी ही पड़ी है, वह सस्मित-सा बोल उठा—"अभी तक आप ने चाय नहीं पी बाबू ? अब क्या मजा आएगा भला उसमें !"

मोहन जाग-सा पड़ा।

और चुक्कड़ उठाकर एक घूंट में सारी चाय पी गया।

"कैसी बनी है चाय, बाबू ?"—चायवाले ने पूछा।

"अच्छी है। एक चुक्कड़ और दो" खाली चुक्कड़ को नाली में फेंकते हुए मोहन ने कहा।

चायवाला चुक्कड़ में चाय भरने ही जा रहा था कि मोहन बोल उठा—"दो मिनट रुक जाओ भाई ! थोड़ी सी पकौड़ी और खाकर पानी पी लू, तब तुम्हरी चाय पीऊँगा।"

"एक छटाँक और दूँ, क्या बाबू जी ?"—पकौड़ीवाले ने पूछा।

"हाँ भाई, लेकिन उसमें एक दो बड़े भी रख देना।" मोहन ने कहा।

"बहुत अच्छा बाबू जी।" कह उसने एक छटाँक पकौड़ी और बडे मिलाकर दोने में दिये। अलग पत्ते पर चटनी और दो हरी-हरी मिर्चें भी।

उसे खाकर मोहन ने पास ही के पाइप पर पानी पीने लगा और जब उसे लगा कि अब उससे और पानी नहीं पिया जायेगा, तब पाइप बन्द कर, कुर्ते से मुँह पोंछकर, पकौड़ीवाले के पास आया।

चायवाले से वह कुछ कहे-कहे कि वह स्वयं ही चुक्कड़ में चाय भरने लगा।

"तुम्हारे कितने पैसे हुए भाई ?"—पकौड़ी वाले से मोहन ने पूछा।

"तीन आने !" उसने कहा।

और मोहन ने तीन आने उसके हाथ में दे दिया।

चायवाले ने चुक्कड़ बढ़ाया।

चुक्कड़ लेकर मोहन ने पूछा—"तुम्हारे दो आने हुए न ?"

"हाँ बाबू जी। "

मोहन ने एक दुअन्नी उसकी फैली हथेली पर रख दी और फूंक-मारकर चाय पीने लगा।

चाय पीकर जब वह उठा, तो उसे लगा कि अब शायद कल भी उसे खाने की जरूरत न पड़े।

वढ़कर सिनेमा के पास आया पहला शो समाप्त हो चुका था। बड़ी भीड़ थी। कुछ लोग आ रहे थे और कुछ जा रहे थे।

एक आने का पान खाकर और चार सिगरेट जेब में रख तथा एक सिगरेट जलाकर जब वह घूमा, तो उसकी दृष्टि आनेवाले चित्र के एक पोस्टर परा जम गई। एक युवक पीछे से एक युवती की कमर को पकड़े था और युवती खोयी-खोयी सी उसकी भुजाओं में पड़ी थी।

निर्निमेष नयनों से वह कई क्षणों तक उस पोस्टर को देखता रहा, फिर उसके पाँव अनायास ही अन्दर उठ आए।

अन्दर चलनेवाले और आनेवाले चित्रों के फोटो लगे हुए थे। चलनेवाला चित्र एक प्रेम और रोमान्स से भरा था। बाँई ओर के ऊपरी सिरे पर के चित्र में एक युवती फव्वारे के पीछे छिपी थी और एक युवक—संभवतः उसका प्रेमी उसे तलाश कर रहा था। उसी के बगलवाले चित्र में उसी युवती को वह युवक अपनी बाँहों पर उठाए सरोवर में से निकल रहा था।

मोहन उदास हो उठा। पीड़ा के घन उमड़ आए उसकी आँखों में। उसे लगा कि उसकी अब तक की जिन्दगी तो बेकार ही गई और शायद आगे भी हो जायेगी। वह जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है जिसमें रोमान्स न हो, मुहब्बत की तड़प न हो, किसी की जुल्फों से खेलने की तमन्ना न हो, किसी की कोमल जवानी को अपने सीने में छिपा लेने की आकांक्षा न हो।

यह सब उनमें कुछ नहीं है, इसलिए उसकी जिन्दगी, जिन्दगी नहीं वीराना है, जिसमें सूनेपन के अलावा कुछ भी नहीं है। बस, एक खलनेवाला, चुभनेवाला सूनापन।

जब रोमान्स करने के उसके भी दिन थे, तब तो उसने किया ही नहीं। फिर अब क्या करेगा? और अगर वह अपनी जिन्दगी के इस सूनेपन को मिटाना भी चाहे तो किससे मिटायेगा? कौन उसके साथ रोमान्स की पेंगे मारेगी? दुनियाँ में कौन ऐसी फालतू युवती है, जो उससे मुहब्बत करेगी?

उसका मन कराह उठा।

और उसके पाँव दरवाज़े के दाहिनी ओर लगे बोर्ड की ओर उठ आए। उस पर एक पारिवारिक फिल्म के फोटो लगे थे। एक फोटो में पत्नी आफ़िस से आए हुए पति का कोट उतार रही थी और दूसरे चित्र में पति खाना खा रहे थे और वह पंखा झल रही थी।

काश! उसकी भी कोई जीवन-संगिनी होती, जो उसके सुख-दुःख मे हिस्सा बटा सकती, जब वह जिन्दगी से निराश होता तो उसे आशा बँधा सकती।

लेकिन ऐसा होगा नहीं, वह अच्छी तरह जानता है। कोई माँ-बाप अपनी लड़की उसे देने ही क्यों लगे, क्योंकि वे पहली ही नज़र में समझ जायेंगे कि वह उनकी बेटी को न खिला सकेगा, न पहना सकेगा। लड़की का बाप कम से कम इतना तो चाहता ही है कि उसकी लड़की को खाने और पहनने की तकलीफ़ न हो और जहाँ इसकी ज़रा-सी भी आशंका होती है, वे रिश्ता नहीं ठीक करते।

उदासी की काली घटायें घिर आयीं उसकी आँखों में और मन में अजीब-अजीब सा सूनापन भर उठा।

थोड़ी देर तक वह वहीं लुटा-लुटा सा खड़ा रहा, फिर झटके से उसके पाँव उठे और वह बाहर चला आया

और तब से यह सूनापन उसके मन में जो भरा तो दूर होने का नाम नहीं ले रहा है, बल्कि वह तो और भी बढ़ता जा रहा है, ज्यों-ज्यों रात बढ़ती जा रही है।

दीवालों, छत और फ़र्श पर उसकी आँखें घूम गईं। उसे लगा वे सब भी उसी की तरह उदास हैं, अकेली हैं, उनके मन में भी सूनापन भर गया है।

उससे उन सूनी-सूनी दीवालों की ओर देखा नहीं गया। उसे डर-सा लगने लगा। उसे लगा कि यदि वह उन दीवालों की ओर देखता रहेगा तो उसके हृदय की गति बन्द हो जायगी और वह मर जायेगा। डरकर उसने आँखें बन्द कर लीं।

लेकिन अधिक देर तक वह अपनी आँखें बन्द नहीं रख सका। अपने मन के सूनेपन को वह देख नहीं सका। डरकर ही उसने आँखें बन्द की थीं और अब डरकर ही उसने आँखें खोल भी दीं।

कमरे में देखने की तो उसकी हिम्मत पड़ नहीं रही थी, इसलिए उसने खिड़की के बाहर सड़क को और सड़क के उस पार की खिड़की को देखा, जिसकी दरारों में से नीली रोशनी की लकीरें छन-छन कर बाहर आ रही थीं।

उसने सोचा कि उस खिड़की के पीछे के कमरे की मुलायम पलँग पर शैल और उसे रुपयों के बल पर ले आया रामनाथ होगा।

शैल और रामनाथ! रामनाथ और शैल!!

वे चाहे जैसे हों, पर उसकी तरह उनके मन में सूनापन तो नहीं भर गया है। अकेलापन तो ये महसूस नहीं करते। यह सूनापन और अकेलापन उन्हें खाने को तो नहीं दौड़ता।

उसे लगा कि यदि दो चार दिन इसी तरह उसकी दशा रही, तो उसकी मृत्यु निश्चित है। वह बच नहीं सकता, चाहकर भी नहीं।

फिर!

क्या वह इसी तरह अपने को मर जाने दें ?

उसे लगा कि यह कायरता है। जान बूझ कर मरना आत्म-हत्या है और आत्म-हत्या पहले दर्जे की कायरता है।

तब वह क्या करे ?

किसके पास जाय ?

किससे कहे ?

उसकी आँखों के आगे शैल की आकृति कौंध गई। वह मुस्करा उठा। उस शैल से वह अपने मन की पीड़ा कहे—जो उसे देखते ही अपनी खिड़की बन्द कर लेती हैं, जो केवल पैसों के लिए अपना रूप और यौवन लुटाने रामनाथ के पास आयी है।

उसके पास अगर पैसा होता, तो एक शैल क्या पचासों शैल उसके पास भी आतीं। यदि उन्हें वह इस कोठरी में बुलाता, इस खटोलेदार चारपाई पर सुलाता तो भी वे हँसती हुई आतीं और मुस्कुराती हुई सोतीं।

लेकिन इस समय जब उसके पास पैसा नहीं, वह फटेहाल है, तब उसके पास शैल क्या पत्थर का कोई टुकड़ा भी नहीं आ सकता।

इसमें किसी का दोष भी नहीं है। आज का युग ही पैसे का गुलाम है। पैसे पर इन्सान, ईमान और इज़्ज़त खरीदी तथा बेची जा सकती है। खरीदी और बेची ही नहीं जा सकती, खरीदी और बेची जा रही है। हर रोज़, हर समय।

सड़क सूनी पड़ गई थीं।

रात सर्दी की वजह से काँप रही थी।

खिड़की पर से उतर, सड़क को पार कर उसकी आँखें अन्दर लौट आयीं और अन्दर आकर सर्दी के कारण बोझिल पड़ गई पलकों के अन्दर क़ैद हो गईं!

आँखें क़ैद हो गईं, पर उसे नींद नहीं आयी, यद्यपि वह सो जाना

चाहता था, ताकि सर्दी से और अपने अन्तर में समा गए सूनेपन की चुभन से बच सके।

पर सो नहीं सका। आँखें बन्द रहीं, पर नींद नहीं आयी। नींद नहीं आयी और वह जागता रहा। जागता रहा और सोचता रहा। सोचता रहा और जागता रहा।

सन्नाटेका कलेजा सहसा ही फट गया और सर्दी से ठिठुरी रात ने चौंक कर अपनी आँखें खोल दीं।

मोहन की आँखें भी पलकों की कैद में नहीं रह सकीं। आँखें खोलकर उसने इधर-उधर देखा। उसकी आँखें सड़क को पार कर शैल की खिड़की पर जा लगीं।

दरारों से आती हुई रोशनी काँप रही थी और उन्हीं के सहारे शैलकी चीखें भी बाहर आ रही थी।

मोहन समझ नहीं सका कि आखिर वह चीख क्यों रही है? उस समय कमरे में उसके और रामनाथ के सिवा और तो कोई होगा नहीं, फिर यह चीख क्यों? लुटने के लिए आई हुई स्त्री को लुटते समय चीखना तो नहीं चाहिए और अगर वह जानती थी कि लुटने में इतनी तक़लीफ होती है कि अपनी चीख को भी वह नहीं रोक सकेगी, तो फिर यहाँ आई ही क्यों थी? मरने की तमन्ना करनेवालों को पहले मरना सीखना चाहिए और मरने के समय की तक़लीफों को बरदाश्त करने की ताकत लानी चाहिए। लुटनेवालों को चाहिए कि लुटते समय चुप रहें, चीखें नहीं, चिल्लायें नहीं, बल्कि हँसे और मुस्कुराये।

लेकिन जब चीखें और तेज हो गईं, तब मोहन को कुछ आशंका हुई। यह तो लुटने के लिए आई हुई शैल की नहीं, बल्कि किसी दूसरी शैल की चीख है जो लुटना नहीं चाहती, लुटनेसे बचना चाहती है और इसीलिए चीखकर वह सहायता माँग रही है, किसी को बुला रही है जो उसे लूटनेवालों से बचा सके।

इस मुहल्ले को, इस मुहल्लेवालों को वह अच्छी तरह जानता है। जानता है कि वे सब इस कोठीवाले से जलते हैं, उसकी बरबादी की दुआयें माँगते रहते हैं। इन चीखों को वे भी सुन रहे होंगे और सुन-सुन कर प्रसन्न हो रहे होंगे, हंस रहे होंगे। ठीक भी तो है। उन्हें प्रसन्न होना भी चाहिए। दुनियाँ को लूटनेवाला आज खुद लुट रहा है। मुहल्लेवालों की तरह उसे भी हँसना चाहिए, जरूर हँसना चाहि।

उसने हँसने की कोशिश की, पर हँस नहीं सका। तब उसे लगा कि लूटनेवाली शैल नहीं लुट रही है,-बल्कि पुरुषों द्वारा आदि से लूटी जानेवाली नारी आज फिर लुट रही है। लुट रही है, इसलिए चीख रही है। चीख रही है और मदद माँग रही है। उनसे मदद माँग रही है, जो लुटे हैं, लुट रहे हैं, लुटने की पीड़ा को जानते और समझते हैं। जो लूट का विरोध करते हैं, उसे रोकना ही नहीं समाप्त भी करना चाहते हैं।

और तब वह अपने को नहीं रोक सका, चाहकर भी। तेजी से उठा और दीवाल के सहारे लटकती हाकी स्टिक को उठा बाहर आया।

उसका ख्याल था कि मेन दरवाजा बन्द होगा, फिर भी उसने उसे खोलने की कोशिश की, लेकिन वह खुला नहीं।

लौटकर वह खिड़की के पास आया और अपनी पूरी ताकत से उसने हाकी स्टिक से खिड़की पर प्रहार किया। खिड़की चरमरा कर टूट गई और वह उछल कर अन्दर आ गया।

अन्दर आने पर उसने देखा कि एक आदमी शैल को जबर्दस्ती पकड़े है और दूसरा उसके आभूषण उतार रहा है। शैल छूटने की कोशिश कर रही है और भय के कारण चीख भी रही है।

खिड़की टूटते ही दोनों ने मोहन की ओर देखा। उसे देखते ही दोनों घबड़ा गए। उनका चेहरे कपड़ों से ढँका था, इसलिए मोहन उनकी घबड़ाहट देख तो नहीं सका, पर उनके ढीले पड़ गए हाथों से उसे ाता चल गया।

उनकी घबड़ाहट का लाभ उठाकर उसने उनपर स्टिक से हमला किया, पर चोट लगने से पहले ही वे बगलवाली दूसरी खिड़की से— जिसमें से होकर वे आए थे—कूदकर भाग गए।

शैल अब भी डर के कारण कांप रही थी। उसकी साड़ी अस्त-व्यस्त हो गई थी। बाँह पर, गले में और गालों पर कुछ खरोंचें भी आ गई थीं। साँस बुरी तरह चल रही थी, जिसकी वजह से उस वक्ष तेजी से उठ-बैठ रहा था। मोहन की दृष्टि क्षणभर के लिए उसके वक्ष पर जम गई और उसे लगा कि उसके मन में शैल के प्रति कुछ मोह-सा पैदा होता जा रहा है।

मोह!

और वह भी शैल जैसी युवती से।

उसे लगा जैसे किसी ने कसकर उसके मुँहपर तमाचा मार दिया हो। वह तिलमिला उठा। अपनी आँखें उसने फेर ली और बाहर जाने के लिए खिड़की की ओर बढ़ा।

शैल उसे जाता हुआ देख रही थी। उसे इस समय ऐसा लग रहा था, जैसे मोहन के साथ-साथ उसकी आत्मा भी चली जा रही है और अब वह आत्महीन होकर रह गई है।

उसने चाहा कि उसे पुकार ले और कम से कम धन्यवाद तो उसे दे ही दे, जिसकी वजह से उसके आभूषण, उसकी इज्जत और जिन्दगी बच गई है। यदि वह कुछ क्षणों तक और न आता तो लुटेरे उसकी दुर्दशा बना डालते।

मोहन खिड़की के पास पहुँच गया था। खिड़की से बाहर जाने के लिए उसने पाँव उठाया ही था कि शैल के होंठ हिले और आवाज बाहर आयी—"जरा सुनियेगा।"

मोहन के उठे पाँव फिर जमीन पर पड़ गए। मुड़कर उसने शैल को देखा और कहा—"कहिए।"

शैल ने सोचा था कि इतना कहने पर ही वह उसके पास आएगा, पर जब वह वहीं खिड़की के पास ही खड़ा रहा, उसके पास नहीं आया, तब वह स्वयं ही उठकर उसके पास गयी और क्षणभर की खामोशी के बाद बोली—"मैं किन शब्दों में आपको धन्यवाद दूँ। यदि आप थोड़ी देर और न आते तो मेरी दशा जाने क्या होती · · ।"

क्षणभर तक मोहन उसे देखता रहा, फिर बोला—"मैं इसकी आवश्यकता नहीं समझता और आपको भी नहीं समझना चाहिए।"

शैल की आँखें आश्चर्य से फैल गईं। उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि अभी-अभी उसने जो सुना है, सत्य है।

स'स्मित स्वर में बोली—"आप ने मेरी सहायता की, मेरी जिन्दगी बचायी और मैं आपको धन्यवाद भी न दूँ। क्या यह उचित है! शराफ़त और इन्सानियत का क्या यही तक़ाज़ा है?"

मोहन ने उसे घूमकर देखा, जैसे उसे पढ़ लेना चाहता हो। बोला—"धन्यवाद कहने के बदले में जो आप सुनना चाहती हैं, वह मुझसे नहीं सुन पायेंगी, इतना आप विश्वास रक्खें, क्योंकि आप जैसों की सहायता करना मैं अपना धर्म या कर्त्तव्य नहीं समझता। मेरे संस्कारों ने मुझे यहाँ तक आने को विवश कर दिया, नहीं तो मैं कभी भी न आता, चाहे आप चीख-चीख कर मर जातीं।"

शैल की आँखें फटी-सी पड़ीं। उसके मुँह से बोल भी नहीं फूटे।

मोहन ने क्षण भर साँस लेने के बाद फिर कहा—"और अगर मुझे मालूम होता कि डाका आपके सतीत्व पर नहीं, बल्कि गरीबों के खून से सने आभूषणों पर पड़ रहा है, तो मैं अपने संस्कारों की हत्या कर देता और यहाँ आकर शुभ काम में कभी भी बाधा न डालता।"

शैल समझ नहीं पा रही थी कि यह मोहन रक्त, मांस और हड्डियों का बना है या संगदिल चट्टानों का, जो केवल चोट पहुँचाना जानती हैं।

खिड़की पर अपना दाहिना पाँव रखकर मोहन ने कहा—"अब

आप जाकर आराम कीजिए। व्यर्थ में अपने साथ-साथ मेरा भी समय नष्ट मत कीजिए।"

शैल को लगा कि वह कठोर है, बहुत ही कठोर, पत्थर से भी कठोर। और सभ्यता तो शायद उसके पास तक फटकी नहीं है, नहीं तो वह उससे इस रुखाई से अधिक पेश न आता।

तभी उसे उस दिन की घटना याद आ गई, जब उसने खिड़की बन्द कर दी थी और वह मुस्कुरा उठी। पुरुष अपने प्रति किए गए व्यवहारों को जल्दी भूलता नहीं और अवसर मिलते ही बदला लेने पर उतारू हो जाता है।

मोहन झटके के साथ खिड़की के बाहर चला गया।

वह खड़ी-खड़ी उस अँधेरे को घूरती रही जिसमें मोहन उसकी नजरों से ओझल हो गया था।

और तभी उसे अपने नौकर की बात याद आयी—"मोहन बाबू देवता हैं।"

देवता!

तब उसे यह भी याद आया कि बचपन में उसने किसी पुस्तक में पढ़ा था कि देवता बहुत देर में प्रसन्न होते हैं और बहुत जल्द नाराज भी हो जाते हैं।

वह वहीं खड़ी रही।

सड़क फिर सूनी पड़ गई थी।

और रात फिर सर्दी से बचने के लिए सो गई थी।

८

मोहन प्लेटफ़ार्म पर बेचैनी से टहल रहा था। बेचैनी के साथ क्रोध और विद्रोह की चिनगारियाँ भी उसके मन को जलाए दे रही थीं।

और उसी जलन में वह प्लेटफार्म के एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलता रहा। टहलता रहा और सिगरेट फूँकता रहा। सिगरेट फूँकता रहा और सोचता रहा।

और जब टहलते-टहलते थक गया, तब चुपचाप पुल के नीचे जमीन पर रूमाल बिछाकर बैठ गया। लेकिन बैठते ही उसे सर्दी महसूस होने लगी और थोड़ी देर बाद उसके जबड़े काँपने लगे।

प्रकाशक द्वारा दिए गए चेक के भुनने के बाद ज्ञानवापी पर आकर उसने एक स्वेटर, एक गुलूबन्द और बुलानाला के खद्दर भडार से एक धोती, दो कुर्ते और दो पाजामों का कपड़ा और एक ऊनी सदरी खरीदी। लेकिन इस समय रात के एक बजे वह ऊनी स्वेटर और गरम सदरी भी उसे सर्दी से नहीं बचा पा रही थी। उसके जबड़े काँप रहे थे। खून जमता जा रहा था।

आज सुबह जब वह काशी से आया था, तो उसकी हालत बर्फ में जमाए गए गोश्त की तरह हो रही थी। ट्रेन से किसी तरह उतर कर, घसिटता हुआ प्लेटफार्म के बाहर आकर, दो-ढाई घण्टे धूप में बैठकर उसने अपने शरीर की रगों को गर्म किया था और तब कहीं उठकर चलने के योग्य हुआ था।

इस समय स्वेटर और सदरी ने उसे बर्फ में जमे हुए गोश्त की तरह तो नहीं होने दिया था, फिर भी उसका खून जमता जा रहा था।

उसने धीरे से सिर घुमाकर आस-पास देखा। कुछ लोग होल्डाल बिछाकर ठाठ से चेस्टर और दस्ताने पहने हुए सिगरेट फूँक रहे थे। उसके मन में कुछ झल्ल से जल उठा।

उन्हीं लोगों के पास दो-तीन स्त्रियाँ गठरी बनी हुई बैठी थीं, जिनका समूचा शरीर थर-थर काँप रहा था।

उसकी आँखों में लौ-सी जल उठी। आखिर ऐसा क्यों? कुछ लोगों के पास सर्दी आते हुए भी क्यों डरती है और कुछ लोगों के प्राण तक भी क्यों ले लेती है? कुछ लोग मामूली स्वेटर या सदरी ही नहीं, दस्ताने, मोजे, कोट और उसके ऊपर से चेस्टर भी क्यों पहने हैं और कुछ लोगों के पास मोटा कपड़ा भी ठीक से क्यों नहीं है? कुछ लोग एक नहीं, दो-दो तीन-तीन कोठियों पर भी सन्तोष नहीं कर पाते, बल्कि और की भी कामना करते हैं और कुछ लोगों को सर ढँकने के लिए फूस का छप्पर भी क्यों नहीं है? क्यों? आखिर क्यों?

सोचते-सोचते उसका सिर दर्द करने लगा। जेब से सिगरेट निकाल कर उसने सुलगायी और चायवाले की तलाश में इधर-उधर देखने लगा।

दो-तीन मिनट के बाद चायवाला दिखाई पड़ा। दो चुक्कड़ चाय उसने पी। सिर का दर्द तो नहीं गया। हाँ, रगों में कुछ गरमाहट अवश्य आ गई, जिससे थोड़ा सा आराम उसे मिला।

मुँह से धुँएँ का गुब्बार निकाल कर उसने आऊटर सिगनल की ओर देखा। अभी गाड़ी आने में देर थी।

सिर दर्द के मारे उससे बैठा नहीं जा रहा था, लेकिन थकान के कारण उठकर चलने की हिम्मत भी नहीं पड़ रही थी। उसकी हालत उस समय वैसी ही हो गई थी कि वह जी सकता था न मर सकता था।

"सिर मालिश!" सहसा उसकी कानों में आवाज आयी।

और आँख उठाकर उसने अपनी ही ओर आते मालिशवाले को देखा। ठिगना-ठिगना-सा, काला-काला-सा। बदन पर अधिक कपड़े नहीं।

सर्दी से काँपा जा रहा था, फिर भी आवाज लगाए जा रहा था—"सिर मालिश !"

पूंजीवाद ने इन्सान को इन्सान नहीं रहने दिया, मशीन बना दिया है, लोहे की निर्जीव मशीन जो केवल चलना जानती है, काम करना जानती है।

"जरा इधर आना भाई।"—मोहन ने उसे पुकारा।

वह आशा लेकर उसके पास आया।

"जरा मेरा सर तो दाब दो, भाई। उड़ा जा रहा है।" मोहन ने कहा।

मालिशवाले ने एक बार मोहन की ओर देखा और उसके पीछे रक्खे लोहे के गाटर पर बैठ गया। कंधे पर तौलिया डाल दी, ताकि कपड़ों पर तेल व बाल न गिरने पाएँ और उसके सिर में तेल डालकर मालिश करने लगा।

सिगरेट की आखिरी कश खींचकर मोहन ने उसे फेंक दिया और आराम से बैठ गया।

मालिशवाला ज्यों-ज्यों उसका सिर दाबता जाता था, उसका दर्द दूर होता जाता था। दर्द दूर होता जाता था और तब आराम मिलता था। और जब आराम मिलने लगा तब उसकी आँखें बन्द होने लगीं। सिर दाबता रहा और मोहन सोता रहा।

उसकी नींद तब खुली जब मालिशवाले ने उसके बालों में कंघी कर उसके हाथ को पकड़ कर ऊपर उठाया। वह कुछ समझे-समझे कि उसने हाथ और पैर भी दबा दिये।

और तब मोहन को लगा कि न तो उसके सिर में दर्द है। और न पैरों में। सारा दर्द और सारी थकान दूर हो गई थी।

"कितने पैसे हुए भाई ?" मोहन ने पूछा।

"चार आने बाबू जी !" उसने बीड़ी सुलगाकर कहा।

"बस ?" आश्चर्य से पूछा मोहन ने।

मालिशवाला कुछ बोला नहीं। केवल सस्मित दृष्टि से मोहन की ओर देखता रह गया।

"यह लो एक रुपया ..." एक रुपया का नोट उसकी ओर बढ़ाकर मोहन ने कहा—"और अब घर लौट जाओ सर्दी बहुत है, नहीं तो बीमार पड़ जाओगे।"

मालिशवाले के हाथ बढ़े नहीं। वह बस मोहन की ओर देखता रह गया।

"लो न भाई!" मोहन ने अनुरोध किया।

"पर मेरी मजदूरी तो चार ही आना ... ।"

उसकी बात पूरी होनेके पहले ही मोहन बोल उठा—"तुम्हारा ख्याल गलत है। तुमने चार आने नहीं, चार रुपए का काम किया है .. लो भी ..!" और उसने वह नोट उसकी हथेली में रख दिया।

मालिशवाला कई क्षणों तक चुपचाप खड़ा रहा, फिर धीरे से तेल की शीशी उठाकर चला गया।

मोहन मुस्कुरा उठा। आज उसका जी कुछ हलका हुआ। अपनी इतनी उमर में आज उसने किसी की सहायता की थी। उसे लगा कि यह सहायता उसने उस मालिशवाले की नहीं, अपनी की है, क्योंकि दोनों एक ही धरातल के जीव हैं, दोनों एक ही शिकारी के शिकार हैं, इसलिए दोनों एक हैं। उनमें कोई अन्तर नहीं है।

उसने फिर एक सिगरेट सुलगायी और मुंह से धुंए के लच्छे निकालने लगा।

थोड़ी देर बाद तीसरी घंटी बजी और कुछ ही क्षणों बाद गोरखपुर-एक्सप्रेस धड़धड़ाती हुई प्लेटफार्म पर आ खड़ी हुई।

उसके खड़े होते ही चिल्ल-पों शुरू हो गई। कुली, चाय गरम, पान-बीड़ी-सिगरेट, की आवाज़ों के अलावा मुसाफ़िरों का शोर-गुल आकाश की छाती को फाड़े दे रहा था।

दरवाजों और खिड़कियों में से चढ़ने और उतरनेवाले मुसाफिरों बेकली को देखकर वह मुस्कुरा उठा। सब पहले चढ़ना चाहते थे। सब पहले उतरना चहते थे। ऐसा लगता था जैसे सब डरे हुए हों कि अगर पहले नहीं चढ़ सकेंगे तो फिर कभी नहीं चढ़ सकेंगे और अगर नहीं उतर सकेंगे तो फिर कभी नहीं उतर सकेंगे।

मोहन चुपचाप खड़ा-खड़ा उस बेचैन हुजूम को देख रहा था। धक्कम-धुक्का, शोर-गुल से वह बहुत घबड़ाता था, इसलिए वह उस भीड़ से दूर ही खड़ा था और इसलिए भी कि ऐसी ही भीड़-भाड़ में लोग लुटते हैं, लोगों की जेबें कटती हैं, और अगर इस भीड़ में कहीं उसकी भी जेब कट गई तो वह बिला मौत ही मर जायेगा। अपने लिए वह तब एक कम्बल क्या खरीद सकेगा, तकादेवाले उसे नोच डालेंगे, कड़ी-कड़ी बातें कह, गालियाँ दे देकर उसकी जान ही ले लेंगे।

उतरनेवाले उतर चुके थे और चढ़नेवाले चढ़ चुके थे और तब वह भी बैठने के लिए आगे बढ़ा कि उसकी दृष्टि अपने पास ही खड़ी एक साँवली युवती पर पड़ी, जो शायद उसी की तरह भीड़ से घबड़ा-कर अलग खड़ी थी।

कनखियों से उसने उसकी ओर देखा। रंग उसका साँवला अवश्य था, पर किसी गोरे रंगवाली से कम आकर्षक वह नहीं थी। छरहरा और कुछ लम्बा और सुडौल शरीर, गोला और भरा हुआ चेहरा, बड़ी-बड़ी मदभरी आँखें। पूरी बाँह का स्वीटर और उस पर से शाल ओढ़े हुई थी, जो उसके उच्च बुर्जुआ क्लास की होने का प्रतीक था।

जब मोहन ने देखा कि वह भी कनखियों से उसकी ओर देख रही है, तब घबड़ाकर उसने अपनी आँखें फेर लीं और तेजी से डिब्बे की ओर बढ़ गया।

डिब्बे भर चुके थे। किसी के बैठने की क्या खड़े होने की भी जगह नहीं थी। पीछे के एक दो डिब्बे देखकर वह आगे की ओर

बढ़ा। इन्टर क्लास के डिब्बे के पास सहसा ही उसके पाँव रुक गए। वह साँवली युवती उसी डिब्बे में बैठी थी। उसकी समझ में नहीं आया कि जब उसके पास इन्टर क्लास का टिकट था, तब वह अब तक क्यों खड़ी थी?

फिर उसे ख्याल आया कि नहीं, उसके पास भी उसी की तरह थर्ड क्लास का टिकट था, पर कहीं जगह न मिलने के कारण वह इन्टर में बैठ गई है। तो क्या वह भी इन्टर में बैठ जाय? अधिक से अधिक दो रुपये हीं न उसे और देने पड़ेंगे, लेकिन उस दो रुपये के बदले वह उस सलोनी को तब तक तो देख सकेगा, कनखियों से ही सही, जब तक वह सफर करती रहेगी।

टी० टी० को देखने के लिए उसकी आँखें उठी ही थीं कि उसने सोचा यह नहीं ठीक है। दो रुपए में थोड़ा-सा और मिलाकर वह दूध-वाले का हिसाब चुकता कर सकता है और यहाँ दो रुपये और देने से वह केवल उसे देख ही तो सकेगा। जिससे उसके मन की लालसा, अतृप्ति ही बढ़ेगी।

यह ख्याल आते ही उड़ती निगाह उस युवती पर डालकर वह आगे बढ़ गया। उस युवती के बगलवाले डिब्बे में उसने झाँका। नीचे की सभी सीटें भर गई थीं। तिल रखने को भी जगह नहीं थी। तब उसने ऊपर देखा। दाहिनी ओर की ऊपरी बर्थ इतनी खाली थी कि पैर सिकोड़ कर उस पर लेटा जा सकता था।

जब वह अन्दर घुसने लगा तो अन्दर खड़े और बैठे लोगों ने उसे रोकना चाहा, पर वह रुका नहीं, अन्दर घुस ही गया और किसी तरह उस बर्थ के पास पहुँचकर वह ऊपर चढ़ गया।

एक सिगरेट जला, खद्दर के कपड़े को अपने सिर के नीचे रख-कर वह लेट गया। उसकी आँखें डिब्बे भर में घूम गईं। सब सिकुड़े-सिकुड़े से बैठे थे।

बगल के इन्टर क्लास में बैठी सॉवली उसे याद आयी, जो गुल-गुले गद्दे पर ठाठ से शाल ओढ़कर बैठी होगी। उसकी एक बार फिर इच्छा हुई कि वह भी इन्टर क्लास में जाकर उसके बगल में नहीं तो उसके सामने बैठ जाय, उसे देखता रहे, निहारता रहे। पर रुपयों का ख्याल आते ही उसे मन मार कर रह जाना पड़ता था।

आज का युग ही पैसों का है। जिसके पास पैसा नहीं है, वह कुछ भी नहीं कर सकता, उसकी कामनायें अतृप्त रह जायेंगी, उसके अरमान अधूरे रह जायेंगे। जीवन के सभी गुणों से वह वंचित रहेगा, यहाँ तक कि उसे सच्चा जीवन-साथी भी नहीं मिल पायेगा।

शादी हो जाना दूसरी बात है, पर सच्चा जीवन-साथी पाना दूसरी बात है। सच्चा जीवन-साथी—जो सुख-दुःख में भाग ले सके, परेशानियों को बँटा सके, हिम्मत बँधा सके—खोजना पड़ता है और खोजने में पैसा लगता है।

मोहन का मन विषण्ण हो उठा। आखिर कब तक इन्सान पैसे का गुलाम रहेगा? कब तक?

गार्ड ने सीटी देकर हरी बत्ती दिखायी। दो क्षण के बाद इंजन ने भी सीटी दी और एक झटके के साथ गाड़ी रेंग चली।

जब गाड़ी ने प्लेटफार्म छोड़ दिया, तब हवा तीर की तरह खिड़कियों में से अन्दर आकर चुभने लगी और तब नीचे बैठे मुसाफिरों ने एक दो आदमियों के विरोध करने के बावजूद भी खिड़कियाँ बन्द कर दीं।

हवा का आना करीब-करीब बन्द हो गया और अन्दर बैठे मुसाफिरों की साँसों से डिब्बे में कुछ गरमी आ गई, जिससे लोगों का काँपना कुछ कम हो गया।

मोहन ने खत्म हो चली सिगरेट को बुझाकर सावधानी से नीचे गिरा दिया और आँखें छत की ओर करके लेट गया।

रेल के धचके के कारण थोड़ी देर बाद उसकी आँखें बन्द हो गईं।

अँधेरे को चीरती हुई ट्रेन तेजी से आगे बढ़ती जा रही थी। अन्दर बैठे हुए कुछ मुसाफिर सो रहे, कुछ ऊँघ रहे थे और कुछ जाग रहे थे, लेकिन सब चुप थे। कोई किसी से कुछ बोल नहीं रहा था। अजीब-सी खामोशी छायी हुई थी।

ट्रेन चलती रही, लोग सोते रहे, ऊंघते रहे, जागते रहे।

एक-एक करके स्टेशन मील के पत्थर की तरह पीछे छूटते जा रहे थे। बनारस से चली गाड़ी कछवा रोड रुकी, उसके बाद माधोसिंह और फिर उसे भी छोड़कर आगे बढ़ रही थी।

किसी कीड़े के काट लेने से मोहन की नींद भी खुल गई। आँखें मलकर उसने नीचे अपने सहयात्रियों को देखा। कुछ तो पिछले स्टेशनों पर उतर गए थे और कुछ चढ़ आए थे।,

एक ही करवट लेटे-लेटे उसकी कमर दर्द करने लग गई थी। नीचे उतर कर कमर सीधी करने के लिए उसने जगह देखी। उसी के नीचे खिड़की के पास एक आदमी के बैठने लायक जगह खाली थी।

जजीर के सहारे वह नीचे उतर आया। कपड़ा उतार कर खाली जगह पर रख दिया और अपने सिर को हलका-सा झटका देकर बैठ गया।

सिगरेट जलायी और खिड़की खोलकर बाहर देखा कि सवेरा होने में अभी कितनी देर है। पर आसमान पर बादल छाए थे और बूंदा-बाँदी हो रही थी, इसलिए समय का कुछ भी अन्दाज न लग सका।

खिड़की खोलते ही सर्द हवा का तेज झोंका अन्दर आया और उसके साथ आस-पास के लोगों के भी शरीर में झुरझुरी उठ आयी। दूसरे लोग उसे खिड़की बन्द करने को कहने ही वाले थे कि उसने स्वयं खिड़की बन्द कर दी।

धुँआ मुँह से निकाल कर उसने सोचा कि सुबह जैसे ही वह अपनी कोठरी मे पहुँचेगा, कोठरी की मालकिन, दूधवाला, लोदई साव, होटल-वाला उसका दरवाजा छेंककर खड़े हो जायेंगे। वे अपने मनमें सोचेंगे

कि मैं आज फिर कोई न कोई बहाना बना दूँगा और तब वे पागल कुत्तों की तरह मुझ पर टूट पड़ेंगे।

पागक कुत्ते !

वह हँस पड़ा। लेकिन इस बार उन्हें पागल कुत्ता नहीं बनना पड़ेगा। वह उन सबके पैसे दे देगा। एक-एक पाई दे देगा और तब उनकी आँखें फटी-फटी-सी रह जायेंगी। रुपया पाने पर वे जरा-सा मुस्कुरायेंगे, अपने पिछले व्यवहारों के लिए माफी माँगेंगे, फिर से अपने यहाँ बुलायेंगे और हड्डी पा गए कुत्तों की तरह दुम हिलाते हुए चले आयेंगे।

उन सबका हिसाब चुकता कर देने के बाद वह खद्दर भंडार से एक ऊनी कंबल खरीद लाएगा, ताकि रात को उसे ठिठुरना न पड़े, नहीं तो किसी दिन वह ऐसा ठिठुर जायेगा फिर नींद ही नहीं खुलेगी।

गाड़ी तेजी से दौड़ रही थी। अँधेरे की छाती फटी जा रही थी।

सहसा उसे लगा कि गाड़ी के नीचे बिछा दी गई सुरंग फट पड़ी है और बगल से किसी ने तोप के गोलों की बारिश कर दी है।

भयानक आवाज के साथ जोरों का झटका लगा। अन्दर के सभी लोग लड़खड़ा कर एक दूसरे पर गिर पड़े। मोहन का सिर जोरों से खिड़की से टकराकर फट गया।

वह देखे और समझे कि अनायास ही यह क्या हो गया ! कि उसे लगा कि जोरों का एक झटका और लगा और वह डिब्बा लड़खड़ाकर बगल की ढालू जमीन पर दौड़ने लगा।

मोहन के सिर में दुबारा चोट लगी। पीड़ा से वह चीख-सा उठा। पर उसके होश-हवाश अभी दुरुस्त थे। जब उसने अपना सिर ऊपर उठाया, तो लगा कि वह डिब्बा जिसमें वह बैठा है, तेजी से किसी अँधेरी गर्त में गिरता जा रहा है।

वह घबड़ा उठा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर यह सब क्या हो रहा है ! उठकर वह खड़ा हुआ ही था कि जोरों का

एक झटका और लगा। खिड़की टूट गई और वह झटके के साथ बाहर जमीन पर जा गिरा, जैसे किसी ने उसे उठाकर फेंक दिया हो।

कब तक वह बेहोश रहा, उसे नहीं मालूम, पर जब उसे होश आया तो उसने देखा कि वह जमीन पर पीठ के बल पडा है। वह समझ नहीं सका कि डिब्बे में से वह यहाँ कैसे आ गया और रेल कहाँ गई ?

उसने उठकर देखने की कोशिश की, पर कमर की दर्द के कारण उससे उठा नहीं जा रहा था। किसी तरह कोशिश करके जब वह उठा, तब उसकी आँखें आश्चर्य और भय से फैल गईं।

जिस डिब्बे में वह बैठा था, वह एक पेड़ से टकराकर लुढ़का पडा था और उसके सहारे पीछे के सभी डिब्बे लटके थे। पर आगे के तीन डिब्बे चूर-चूर हो गए थे।

औरतों का रोना, बच्चों का चीखना और पुरुषों का कराहना मनमें अजीब किस्म की बेचैनी भर रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि इतने लोगों का रोना, चीखना और कराहना वह बरदाश्त नहीं कर सकेगा। हृदय को तडपा देनेवाली वे आवाजें उसके हृदय को चाक-चाक कर देंगी, उसे लगा।

लेकिन यह सब क्या हो गया? कैसे हो गया ? क्या ट्रेन लड़ गई ? या उलट गई ? आखिर हो क्या गया ?

मशाल लेकर अपने पास से गुजरते रेलवे के एक आदमी से उसने पूछा कि यह सब क्या हो गया। उसने बताया कि ट्रेन उलट गई है।

ट्रेन उलट गई है !

उसके मन और मस्तिष्क को झटका-सा लगा। उसे धीरे-धीरे सब याद आ गया। तभी वे झटके लगे थे और शायद उन्हीं झटकों में वह बाहर आ गया, नहीं तो वह भी कहीं दबा पड़ा होता।

लेकिन वह यहाँ अकेले ही क्यों पड़ा है ! डिब्बे के दूसरे लोग कहाँ गए ? उसका सामान कहाँ गया !

सामान का ख्याल आते ही वह जोरों से चौंक पड़ा। घबड़ा कर आस पास देखा। कपड़े का बंडल वहीं पास ही में पड़ा था। सन्तोष की साँस लेकर उसने उसे उठा लिया।

और जब उसने जेब के रुपए को देखने के लिए हाथ डाला, तो उस पर बिजली-सी गिर पड़ी। उसे लगा, जैसे किसी ने उसे हिमालय पहाड़ की चोटी पर से उठा कर नीचे फेंक दिया है। रुपए जेब में नहीं थे। घबड़ा कर उसने अपनी सारी जेबें देख डाली, पर दो ढाई रुपए के सिवा जेबों में कुछ भी न था।

अपनी मणि के गायब हो जाने पर जिस तरह साँप बेचैन हो उठता है, उससे भी अधिक बेचैन मोहन हो उठा। पागलों की तरह उसने अपने आस-पास की जमीन का चप्पा-चप्पा छान मारा, पर नोट क्या कागज का एक टुकड़ा भी नहीं मिला उसे। विक्षिप्त-सा वह लुढ़के हुए डिब्बे में घुस गया। उसका एक-एक इञ्च, एक-एक कोना तलाश किया, पर नोटों को नहीं मिलना था, नहीं मिले।

उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया, और वह वहीं सिर थाम कर बैठ गया।

अब कैसे वह खरीदेगा कम्बल? कैसे तकादेवालों का रुपया देगा? कहाँ से देगा?

इसके पहले बड़ी-बड़ी चोटें लगी थीं उसे, पर उसकी आँखें कभी भी, क्षण भर के लिए भी नहीं भीगीं थीं। पर आज की चोट ने उसके मन की सारी शक्ति और धीरज को छीन लिया। उसकी आँखों में आँसू आ गए और इतने आए कि आँखों में समा नहीं सके, गालों पर ढुलक पड़े और जो ढुलके तो ढुलकते ही रह गए।

यदि उसका कोई निकट का संबन्धी भी मर जाता तो भी उसे इतनी मर्मान्तक पीड़ा न होती, जितनी उन रुपयों के चले जाने से हो रही थी।

पास ही से आती कराहने की आवाज ने उसे अपने मन को काबू

में कर उठने को विवश कर दिया। उठ कर उसने अपने आँसू पोंछे और कपड़े का बंडल उठा कर उधर ही बढ़ा, जिधर से कराहने की आवाज आ रही थी।

उसके पैर इन्टर क्लास के उसी डिब्बे के सामने रुक गए जिसमें साँवली चढ़ी थी। उसने गौर से इधर देखा, तब उसे पता चला कि कराहने की आवाज अन्दर से आ रही है। टूटे दरवाजे को हटा कर वह अन्दर पहुँचा।

अन्दर टूटी हुई बर्थ के नीचे वही साँवली पड़ी हुई कराह रही थी। आकाश पर छाए बादल कुछ हट चुके थे और सवेरा भी होने वाला था, फिर भी वहाँ काफी प्रकाश नहीं था। बाहर उसने झाँका। केवल दो तीन मशालों के सहारे लोग मलबा हटा कर लाशें निकाल रहे थे।

उन्हें पुकारना व्यर्थ समझ कर उसने कपड़े की गठरी बाहर फेंक दी और अपनी पूरी शक्ति लगा कर बर्थ को उसके ऊपर से हटा दिया। गनीमत यह थी कि एक टेढ़ी पड़ गई छड़ के ऊपर ही बर्थ का लगभग सारा बोझ था, नहीं तो वह उसी के नीचे पिस कर रह जाती।

झुककर उसने उसे देखा। उसके भी सिर में चोट आ गई थी और खून की लकीरें गालों पर जम गई थीं। कई क्षणों तक वह उसे उसकी बन्द आँखों को, उसके भोले भाले चेहरे को देखता रहा, जिसपर उस समय पीड़ा की रेखायें खिची थीं।

अभी-अभी रुपयों के गुम हो जाने की जो मर्मान्तक चोट लगी थी वह उसे भूल क्या गया, उस साँवली युवती को देखकर उसके मन की दबी लालसाओं और कामनाओं ने उमड़ कर उसे दबा सा दिया।

उसे लगा कि उसका मन उसके शरीर की रग-रग उसके काबू के बाहर होती जा रही है। उस पर एक अजीब-सा नशा छाता जा रहा है जो उसके विवेक पर हावी होता जा रहा है।

उसकी आँखें उसके चेहरे पर से होती हुई उसके काँपते होठों और

साँस लेने की वजह से उठते-बैठते वक्ष पर जम-सी गईं। उसके भी होंठ फड़कने लगे और उँगलियाँ मरोड़ खाने लगीं। होठों की अमृत फड़कन और उँगलियों की मुड़न अपनी चरम सीमा पर पहुँचने ही वाले थे कि युवती ने कराह कर करवट बदली।

उसकी लालसाओं और अमृत कामनाओं को डर कर दब जाना पड़ा। विवेक फिर जाग उठा। उसे लगा कि उसके मन में जोरों का उबाल उठ रहा है, जैसे खौलते पानी में उबाल उठता है।

मोहन ने धीरे से कहा—"उठिए !"

पहली आवाज जैसे उस युवती के कानों में नहीं पड़ी, इसलिए मोहन ने दूसरी बार जरा जोर से उठने को कहा।

इस बार युवती की आँखें बन्द नहीं रह सकीं। धीरे से अपनी पलकें उसने ऊपर उठायीं। और जब उसने मोहन के चेहरे को अपने चेहरे के ऊपर झुके हुए देखा, तो अनायास ही उसकी आँखों में लाज की रेखायें तैर उठीं, गालों पर लालिमा आई और देखने के पहले ही चली भी गई। कानों के कोर गर्म हो उठे। उसकी उठी पलकें फिर झुक गईं।

इन सब चीजों को धुँधलके के कारण मोहन नहीं देख सका, इसलिए पलकों को बन्द होते देखकर उसने समझा कि उसे फिर से बेहोशी आ रही है, वह बोल उठा—"उठिए, ट्रेन उलट गई है। बाहर चलिए।"

ट्रेन उलटने की बात सुनते ही युवती के सिर और पाँवों का दर्द फिर उमड़ आया। कराहते हुए उसने उठने की कोशिश की, पर पाँव की चोट के कारण नहीं उठ सकी।

"नहीं उठ पा रही हैं क्या आप ?"—मोहनने पूछा—'सहारा दूं ?"

युवती कुछ नहीं बोली। सिर हिला कर 'हाँ' कहा।

मोहन के हाथ युवती को उठाने के लिए बढ़े, पर उसके शरीर के पास पहुंचते-पहुँचते रुक गए। उसे डर लग रहा था। यदि उसके शरीर

का स्पर्श करते ही उसके मन की लालसा और अतृप्ति फिर से जाग उठी, तब तो अन्धेर ही हो जायगा और यह युवती भी अपने मन में जाने क्या समझ ले। गुण्डा, बदमाश, लफङ्गा, आवारा!

पर शीघ्र ही उसने अपने को संभाल लिया और यह सोचकर कि वह किसी मादक युवती को नहीं, मोम की पुतली को उठाने जा रहा है, उसने उसकी बाँह पकड़कर उठाने की कोशिश की, पर वह न उठ सकी। उसकी साड़ी पाँव से पास कहीं फँस गई थी।

और मोहन के मन का बुरा हाल हो गया था। उसके शरीर का स्पर्श करते ही उसके मन पर जो बोझ रक्खा हुआ था वह लुढ़क पड़ा, और उसके अन्दर का उबाल बाहर आने के लिए जोर मारने लगा।

उसका दिल बेकाबू हो गया था, पर दिमाग नहीं। वह अब भी ठीक-ठीक काम कर रहा था। उसने पाँव के पास की कीली में फँस गई साड़ी को छुड़ा दिया और कहा—"अब उठिये, मैं सहारा दे रहा हूँ।"

पर वह मोहन का सहारा पाकर भी न उठ सकी। मोहन की आँखों ने उसकी आँखों से पूछा कि अब? जवाब में उसकी आँखों ने कहा कि मुझे गोद में उठा कर बाहर ले चलो।

और इसके सिवा दूसरा चारा ही क्या था? न वह अपने से उठ सकती थी और न मोहन का सहारा पाकर ही। ऐसी स्थिति में वो उसे उठा कर ही बाहर लाना ठीक था।

मोहन के मन और मस्तिष्क में जोरों का संघर्ष चल रहा था। उसका मन ऊबाल खा-खा कर उसके मस्तिष्क पर छा जाना चाहता था, पर उसके मस्तिष्क जैसे कमल के पत्ते की तरह था। मन को खीझ कर फिर वापस हो जाना पड़ता था।

और अपने मस्तिष्क के हो निर्देशन पर उसने उस युवती के गले और पाँवों के नीचे हाथ डाल कर उसे उठा लिया और डिब्बे के बाहर निकलने लगा।

डिब्बे के बाहर आते-आते उसका मन उसके मस्तिष्क पर हावी हो उठा था। कमल के पत्ते की चिकनाई खत्म हो चुकी थी।

उसकी भुजाओं का बन्धन कसता जा रहा था। युवती का शरीर उसके सीने में समता जा रहा था।

युवती भी कुछ नहीं बोल पा रही थीं, चाह कर भी। उसकी रगें दुखने लगीं, यहाँ तक कि वह अपने सिर और पाँव की चोट को भी भूल गई।

उसकी उठी पलकें धीरे-धीरे फिर ढँक गई, क्योंकि उसकी आँखें मोहन की आँखों से मिलने में शर्मा रही थीं। साँवले गाल सुर्ख होते जा रहे थे। मन पर नशे की अजीब-सी परत जमती जा रही थी।

डिब्बे के बाहर आकर मोहन ने उसका चेहरा देखा। बदली-भरी सुबह की उदास रोशनी में खून की लकीरों भरा हुआ उसका चेहरा बड़ा भला रहा था। उसका जी हो रहा था कि वह युवती को इसी तरह अपनी गोद में उम्र भर तक उठाए रहे। उठाये रहे और उसे देखता रहे।

उधर मलबे के पास शायद खोज खत्म हो चुकी थी और लोग इस तरफ भी देखने आ रहे थे कि कोई घायल तो नही हुआ।

मोहन के पाँव अपने कपड़े के बंडल के पास रुक गए। आदमी उसी की ओर बढे आ रहे थे। उस युवती को उतारने के लिए वह झुका, पर उतार नहीं सका। उसे लगा जैसे वह युवती उसी का एक अंग बनकर रह गई और अपने से अलग करने के लिए शायद उसे आपरेशन कराना पड़ेगा।

आदमी बढे आ रहे थे।

उसने अपने मन पर काबू पाने की कोशिश की लेकिन मन के उबाल को दबाना इतना आसान नहीं था।

आदमियों के आने की आवाज सुनकर युवती की भी आँखें खुल

गईं। उसने शर्मायी आँखों से मोहन को देखा और आँखों ही आँखों में अपने को बन्धन-मुक्त कर देने की प्रार्थना की।

मोहन का विवेक फिर जाग उठा था और मन का उबाल उसी के नीचे दबकर फुफ्कार मारने लगा।

युवती ने अपनी भुजायें मोहन के कधे पर से हटा लीं। उसे उतार कर मोहन ने कहा—"आप यहीं बैठिए, मैं अन्दर से आपका सामान निकाल लाता हूँ। कितना सामान है आपका ?"

दो-तीन क्षणों तक युवती चुप रही फिर बोली—"अधिक नहीं। एक छोटी-सी अटैची और एक शाल हैं !"

मोहन फिर अन्दर घुस गया। अटैची वहीं एक कोने में दबी हुई पड़ी थी और शाल भी। उन्हें लेकर वह बाहर आया।

तब तक आनेवाले आदमी वहाँ पहुँच चुके थे।

"अरे आप लोगों को भी तो बहुत चोट आयी ," उनमें से एक ने कहा—"चलिए आप लोग भी दवा लगवा लीजिए, नहीं तो तकलीफ बढ़ जायेगी !"

युवती ने मोहन की ओर देखा और आँखों ही आँखों में कुछ कहा।

मोहन ने कहा—"आप लोग चलिए। साड़ी बदल लेने पर मैं इन्हें स्वयं लिवा कर आता हूँ। .."

और वे आगे बढ़ गए।

"आपकी साड़ी फट भी गई है और उसपर खून के धब्बे भी पड़ गए हैं ," उन लोगों के चले जाने के बाद मोहन ने कहा—"आप साड़ी बदल लीजिए. !"

कह कर मोहन उसके उत्तर की अपेक्षा किए बिना ही आगे बढ़ गया।

युवती उसे जाते देखकर मुस्कुरा उठी।

आगे बढ़कर मोहन ने सिगरेट निकालने के लिए जेब में हाथ डाला, तो सिगरेट की एक डिब्बी के साथ-साथ दो रुपये का नोट भी निकल

आया और तब उसे फिर से याद आ गया कि वह लुट गया है। इस ट्रेन ने उलट कर उसकी जान ही ले ली होती तो अच्छा होता। अब क्या करे वह ? कहाँ खोजे उन रुपयों को ? फिर कहाँ से लाए उतने रुपये ?

उसका मन फिर रो उठा और उसकी भींगी-भींगी आँखों के आगे तकादेवालों की रौद्र मूर्ति नाच गई और वह काँप-सा उठा। इस बार वे उसका जीना मुहाल कर देंगे। वह वहाँ रह भी पायेगा या नहीं वह स्वयं नहीं जानता।

उसने चारों ओर एक नजर फिर दौड़ाई, जहाँ कि वह गिरा था, पर उसके रुपये नहीं, केवल खुदी मिट्टी, कुछ सूखे, कुछ हरे और कुछ भींगे पत्ते और झाड़-झखाड़ ही था।

वहाँ से हटकर उसने डिब्बे में भी तलाश किया, पर वे रुपये तो जैसे जादू के जोर कहीं उड़ गए थे।

डिब्बे में से निराश होकर वह निकल ही रहा था कि युवती ने उसे पुकारा—"जरा सुनिए।"

उसने उसकी ओर देखा, पर कुछ बोला नहीं। उसकी आँखें भी उस युवती पर से हटकर आकाश पर जा लगीं, जैसे उससे पूछ रही हों कि मेरे रुपए कहाँ हैं ? कौन ले गया उन्हें ?

उस समय उसके दिल और दिमाग़ पर वह युवती नहीं, खोये हुए रुपये और उन रुपयों को पानेवाले तकाजे वालों की खूँखार आकृतियाँ छाई हुई थीं।

युवती ने उसे फिर पुकारा।

आकाश से उसकी आँखें उतर कर उस युवती के पास और उसके पैरों के पास पड़े अपने कपड़े के बंडल पर रुक गईं।

झटके के साथ वह बाहर आकर युवती के पास आया और कपड़े के बंडल को झपट कर उठा लिया, जैसे कपड़ों का वह बंडल भी उससे छिना जा रहा हो।

युवती ने आश्चर्य से उसे देखा। वह समझ नहीं पा रही थी कि इतनी ही देर में उसे क्या हो गया! अभी-अभी वह उसे गोद में उठा कर अपने सीने में छिपा लेने का प्रयास कर रहा था और अब उसकी ओर ठीक से देख भी नहीं रहा है।

ऐसा युवक उसने कभी नहीं देखा था। उसके पास जो आते थे उसके रूप और यौवन के नशे में अपने मन को बिल्कुल भूल जाते थे। जब तक वे उसके पास रहते थे, अपने होश में नहीं रहते थे। पर यह? यह तो जैसे अपने होश-हवाश खोना ही नहीं जानता। नशे में रहता है, और फिर भी नशा नहीं चढ़ता इस पर।

उसने फिर कहा—"मैं साड़ी बदल चुकी हूँ। मुझे सहारा देकर डाक्टर के पास तक ले चलिए !"

मोहन ने उसे देखा। इस समय उसे न वह मादक लग रही थी और न रूपवती तथा न उसे देखकर उसके मन की अतृप्त लालसायें व कामनायें ही जाग रही थीं।

उसे लगा कि सामने खड़ी युवती से, किसी दूर देश में, बहुत साल पहले उसका परिचय हुआ था और आज यहाँ घायल होकर वह इस रूप में, उसी परिचय के बल पर, उससे सहायता माँग रही है।

उसने धीरे कहा—"चलिए!"

युवती ने अपनी अटैची की ओर देखा।

"ओह!"—कह मोहन ने अटैची को उठा लिया। युवती उसके कंधे का सहारा लेकर लँगड़ाते हुए चलने लगी।

लुढ़के हुए डिब्बे के इस पार आने पर दोनों की आँखों में आश्चर्य, भय और वेदना की रेखायें सजीव हो उठीं।

तीन डिब्बे बिल्कुल चूर हो गए थे। उन चकना-चूर डिब्बों के बीच कई लाशें पड़ी थी, जिनकी ओर देखा भी नहीं जा रहा था. डिब्बों के

उस खँडहर के पास ही घायलों की कराहती भीड़ पड़ी थी, डाक्टर जिनका प्राथमिक उपचार कर रहे थे।

मोहन की दृष्टि सहसा ही पेड़ की एक डाली और डिब्बे के बीच लटकती लाश पर पड़ी और उसका सर्वाङ्ग काँप उठा। आस-पास के लोगों से उसने सुना कि शहर के अस्पताल में पड़ी अपनी बीमार पत्नी के इलाज के लिये वह रुपये लेकर जा रहा था।

उसके मन को झटका-सा लगा। यह तो यहाँ मर ही गया है, अस्पताल में इसकी पत्नी भी मर जायेगी। यह पूँजीवादी युग है। विना पूँजी के कोई दवा भी नही पा सकता। पूँजी के गुलाम डाक्टर उसे अस्पताल से निकाल बाहर करेंगे और तब वह कुत्तों की तरह मर जायेगी। कोई देखनेवाला नहीं, कोई रोनेवाला नहीं, कोई शव-दाह करनेवाला नहीं।

आखिर कब तक ऐसा होता रहेगा? कब तक इन्सान पैसे के अभाव में दवा और रोटी न पाने पर तड़प-तड़प कर मरता रहेगा? कब तक ये अर्थ-पिशाच इन्सानों की जिन्दगी से खेलते रहेंगे? कब इनका अन्त होगा? कब वह स्वर्ण-युग आएगा, जब इन्सान पैसा पर नहीं बिकेगा, पैसों पर नहीं मरेगा, पैसों के लिए नहीं लुटेगा! आखिर कब?

और मोहन का मन इस 'कब' में उलझ गया, जो उस जैसे इन्सानों के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बनकर रह गया।

———

१

शैल रात भर नहीं सो सकी, चाहकर भी नहीं, कोशिश करने पर भी नहीं।

सारी रात करवट बदलते ही बीती।

क्षण भर के लिए भी यदि उसकी पलकें मुँदतीं, तो उनमें उन आदमियों की आकृति झूम जाती जो उसका आभूषण लूटने आए थे, और तब डर की वजह से उसकी आँखें अपने आप खुल जातीं।

और जब उसकी आँखें खुली रहतीं, तो मोहन की आकृति उसकी आँखों के आगे नाचा करती। उस समय मोहन ने उसका जो अपमान किया था, उसे वह भूल नहीं पा रही थी। भूल नहीं पा रही थी, इस लिए उसकी सूरत नहीं देखना चाहती थी।

लेकिन आँखें भी वह बन्द करने में डरती थी और अगर किसी तरह बन्द भी कर लेती थी, तो दूसरे ही क्षण उसे खोल भी देना पड़ता था।

न आँखें बन्द कर सकती थी और न उन्हें खोल सकती थी। वही हाल कि न हँसा जाय और न रोया जाय। न आँसू बहें, न होंठों पर फरियाद आए। बुरी हालत थी उसकी।

आँखों ही आँखों में रात तो काट दी उसने, पर सुबह होते-होते उसके सिर में जोरों से दर्द होने लगा, इतनी जोरों से कि उसे लगा कि उसके सिर की सारी नसें अब फट जायेंगी और उनके फटते ही उसे हमेशा के लिए आराम मिल जायेगा।

पर न तो उसके सिर की नसें फटीं और न उसे हमेशा के लिए

आराम ही मिला। हाँ, सूरज की पहली किरण ने जब औरों को जगाया तो शैल को सुला दिया।

और जब वह सोयी तो ऐसी सोयी कि दोपहर के एक-डेढ़ बजे तक उसकी नींद नहीं खुली।

नौकर कई बार उसे जगाने आया, पर हर बार उसे सोती देखकर सस्मित-सा वापस चला गया। वह समझ नहीं पा रहा था कि आखिर उसकी बीबीजी आज इतनी देर तक क्यों सो रही हैं? रात को औरतें और वह भी कुमारियाँ बहुत कम जागती हैं। जागती वें ही हैं, जो सिनेमा देखने की शौकीन हैं, या जो किसी से दिल लगा बैठी हैं, जिनकी रातें तारे गिन-गिन कर बीतती हैं।

नौकर ने सोचा इन दो से तो कोई बात उसकी बीबी जी में नहीं है। यदि वे सिनेमा की शौकीन होतीं तो अब तक कई बार देख आई होतीं। अब रही दिल लगा बैठने की बात। इस सम्बन्ध में निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, फिर भी लगता ऐसा है कि उन्होंने किसी से नेह नहीं लगाया है और अगर किसी से नेह लग भी गया होगा, तो अभी उसकी केवल शुरुआत होगी।

कई क्षणों तक वह चुपचाप शैल को सपने की सेज पर सोते देखता रहा, फिर चुपचाप ही वापस अपनी कोठरी में लौट गया। अपनी पत्नी और बच्चे को उसकी माँ के घर कल रात ही को पहुँचा आया था। आज वह उन्हें लिवाने के लिए जाना चाहता था और जाने के पहले शैल से आज्ञा लेनी जरूरी थी, इसलिए वह उसके जागने की राह देख रहा था।

अपने कमरे में आकर वह चारपाई पर लेट गया और उसकी आँखें छत की कड़ियों को गिनने लगीं। उसकी आँखें छत की कड़ियों को गिन रही थीं, पर उसका दिल और दिमाग शैल के पास ही था। वह समझ नहीं पा रहा था कि आखिर शैल आज इतनी देर तक क्यों सो

रही है, जब कि हमेशा अधिक से अधिक छः बजे उठकर अखबार पढ़ने लग जाती थी।

-फिर आज क्यों दोपहर तक सो रही है ? लगता तो है कि जैसे रात भर वह जागती रही है। लेकिन क्यों ? अपने भाई का असर उनके खून में है ? न, नहीं। ऐसा तो नहीं लगता। यह सच है कि दोनों भाई बहिन हैं, दोनों के शरीर में एक ही माँ-बाप का रक्त है, फिर भी दोनों में महान अन्तर है।

रामनाथ जितना ही लम्पट, दुराचारी, दरिन्दा और खूँखार है, शैल उतनी ही सीधी, भोली-भाली, सच्चरित्र और दयावान है। दोनों में उतना ही अन्तर है, जितना ट्रूमैन और स्टालिन मे। दोनों अतरिक्षके उन दो विपरीत कूलों की तरह हैं, जो आपस में कभी नहीं मिल सकते।

फिर क्या बात है ? वह क्यों जाग रही थी रात भर ? क्या किसी की याद उसे रात भर नहीं सोने दे रही थी ? लगता तो कुछ ऐसा ही है। पर किसकी ? लखनऊ में रह गए किसी साथी की ? शायद नहीं। क्योंकि यदि लखनऊ में वह अपने मन के मीत को छोड़ आयी होती, तो आज के पहले भी वह न सो पाती।

फिर कौन हो सकता है वह ?

तभी उसकी आँखों के आगे मोहन की आकृति घूम गई। क्या मोहन ?

पर दूसरे ही क्षण अपने ही पर वह हँस पड़ा। शैल मोहन से प्यार करेगी! उस मोहन से जो उसे जानता तक नहीं, जिसने उसे देखा तक नहीं, जिसका कहना है कि अमीरों के दिल की जगह पत्थर होता है, पत्थर! और फिर शैल भी तो उसे नहीं जानती। यह ठीक है कि कल उसके बारे में वह कुछ पूछ रही थी और उस समय उसके चेहरे पर शर्म की लाली भी थोड़ी-थोड़ी थी, पर इसका मतलब तो यह नहीं हो गया कि वह उसे प्यार ही करने लगी है।

फिर ....

अभी वह विचारों की दुनियाँ से निकल भी न पाया था कि रामनाथ की कर्कश आवाज उसके कानों में आयी और वह हड़बड़ा कर उठ बैठा।

हौले से दरवाजा वन्द कर वह परेशान मुद्रा में बैठे हुए रामनाथ के पास आया।

रामनाथ ने पूछा—"शैल कहाँ है ?"

"अपने कमरे में सो रही हैं ,"—नौकर ने धीरे से कहा।

"सो रही है ! . क्यों.. ?"—रामनाथ इस्मित स्वर में बोल उठा।

'यह तो मैं नहीं जानता। मैं कई वार उन्हें जगाने के लिए गया, पर उन्हें सोयी देखकर जगाया नहीं. . ."—उसने कहा।

क्षण भर की चुप्पी के वाद रामनाथ ने पूछा—"शैल आज इतना सो क्यों रही है, तुम जानते हो ?"

नौकर ने नकारात्मक उत्तर दिया।

"क्या रात को वह अधिक देर तक पढ़ती रही है ?"—रामनाथ ने पूछा। "मैं नहीं जानता . "—

और तब रामनाथ चीख सा उठा—"कुछ जानते भी हो या नहीं। हर वात में नहीं ! रात को तुम मर गए थे क्या ?"

नौकर सहम कर चुप हो गया।

"जाओ देखो अगर वह उठ गई हो तो बुला लाओ . "—क्षण भर के वाद रामनाथ ने कहा—"और अगर न जगी हो, तो उसे जगा कर उसके लिए नाश्ता तैयार करो।"

"वहुत अच्छा. . "कह नौकर शैल के कमरे की ओर चला गया।

शैल जाग् गई थी, पर पलँग पर से अभी उतरी नहीं थी। सिर घुमा कर उसने नौकर को अन्दर आते देखा तव उठ कर बैठ गई।

"गुसलखाने में पानी रख दो और जल्दी से चाय बना लाओ .।" शैल ने उसके कुछ कहने के पहले ही कहा।

"बहुत अच्छा!"—कह कर वह खड़ा ही रहा, गया नहीं।

अपने गालों पर उतर आयी लटों को पीछे हटा कर शैल ने कहा "अभी तुम गए नहीं। जाओ, और जल्दी करो. ."—

"बीबी जी, मालिक आपका बड़ी देर से इन्तजार कर रहे हैं .। उसने कहा।

"कौन, भैया? उनसे कह दो मैं अभी आयी ।" शैल ने कहा।

वह सिर हिलाकर बाहर चला गया।

अपने बालों को ठीक कर वह बाहर जाने ही वाली थी कि टूटी खिड़की में से होकर उसकी आँखें मोहन के दरवाजे पर लटकते ताले पर पड़ीं।

कई क्षणों तक वह उस ताले को अनिमेष नयनों से देखती रही, जिसमें पीड़ा की रेखायें छलक आयी थीं। वह उस कमरे को खुला और उससे अन्दर मोहन को हमेशा बैठा देखना चाहती थी, पर इस समय न तो कमरा खुला था और न उसमें मोहन था।

वह समझ नहीं पा रही थी कि आखिर मोहन गया कहाँ! जब से वह आयी है उसे उसी कोठरी में देखा है। फिर आज वह कहाँ गया? और क्यों गया?

यह ख्याल आते ही वह अपने पर मुस्कुरा उठी। मोहन अपना मालिक स्वयं है, जहाँ उसकी इच्छा होगी जायेगा और जब तक चाहेगा बाहर रहेगा। और वह तो ऐसा सोच रही है कि मोहन पर उसका अधिकार है, वह जो चाहेगी, वह वही करेगा, जहाँ कहेगी वहीं जायेगा!

औरतों के हृदय में स्वामी बनने की भावना बड़ी तीव्र रहती है। जिन्हें वे पसन्द करती हैं, या चाहने लगती हैं, उन्हें अपने कब्जे में ही

देखना चाहती हैं, चाहती हैं कि कोई उनकी ओर न देखे और न वे ही किसी की ओर देखें।

शैल जब मुस्कुरायी, तो मुस्कुराती, ही रही। मुस्काते हुए ही वह गुसलखाने में गयी।

और जब वह नहाकर बाहर आयी, तो उसके सिर के साथ-साथ उसका मन भी हलका हो गया, इतना हलका कि वह भूल गई कि आज रात भर उसे नींद नहीं आयी थी, जिसकी वजह से उसके सिर की नसें फट जाना चाहती थीं।

रामनाथ के पास आकर उसने पूछा—"बहुत देर से आए हैं, क्या आप ?"

शैल के चेहरे की ओर अन्वेषक की तरह देखकर उसने कहा—"नहीं, अभी ही आया हूँ !"

शैल चुपचाप कुर्सी पर बैठ गई।

"आज अभी तक क्यों सो रही थी ? तबियत खराब हो गई थी क्या ?" शैल जिस प्रश्न से बचना चाहती थी, वही सामने आकर खड़ा हो गया।

क्षण भर के लिए उसके मन में द्वन्द उठ खड़ा हुआ। क्या वह सब कुछ सच-सच बता दे ? यदि वह बता देती है तो फिर वह यहाँ रह नही सकेगी, उसका भाई उसे अपने साथ रहने के लिए लिवा जायेगा। जो वह नहीं चाहती, कभी चाहेगी भी नहीं। यहाँ से, इस कोठी से, यहाँ के आस-पास के कुछ लोगों से इतने ही दिनों में उसे कुछ नेह-सा हो गया है। मोह-माया के बन्धनों में वह बुरी तरह जकड़ गई है, इस बुरी तरह कि, उससे मुक्ति पाना अब उसके बस की बात नहीं है।

उसने धीरे से कहा—"ऐसी तो कोई बात नहीं है भैया। रात को देर तक पढ़ती रही इसलिए सिर में दर्द होने लगा था, और ।"

उसकी बात पूरी होने के पहले ही रामनाथ बोल उठा—"तो किसी

डाक्टर को क्यों नहीं बुलवा लिया था ? या मुझे खबर क्यों नहीं कर दी थी।"

"आप तो जरा-जरा-सी बात में घबड़ा जाते हैं। मामूली सा दर्द था, सो लेने से जाता रहा ।" शैल ने मुस्कुरा कर कहा।

"मामूली-मामूली-सी बातें तो बढ़कर भयंकर रूप धारण कर लेती हैं ।" रामनाथ ने कहा।

शैल मुस्कुरायी और बोली—"यह आपका भ्रम है भैया और कुछ नहीं।"

रामनाथ कुछ बोलने जा ही रहा था कि नौकर ट्रे में चाय और नाश्ता ले आया।

शैल ने चाय बनाकर एक प्याली रामनाथ के आगे बढ़ा दी।

चाय की पहली चुस्की लेकर रामनाथ ने कहा—"तो अपनी प्रैक्टिस के बारे में तुमने क्या सोचा ?"

"प्रैक्टिस ? ओह, मैं तो उसके बारे में बिल्कुल भूल ही गई थी!" शैल ने कहा—"और फिर उसमें सोचना क्या है। अभी कुछ दिनों मैं और आराम करना चाहती हूं और फिर उसके बाद जैसा आप कहेंगे, वैसा ही करूंगी ।"

"मेरे कहने की बात छोड़ दो। तुम पर किसी भी काम के लिए मैं दबाव नही डालना चाहता " रामनाथ ने कहा—"अब तुम स्वय समझदार हो गई हो कि मेरे कहने की आवश्यकता ही नहीं। प्रैक्टिस के लिए तो मैं इसलिए कह रहा था कि यहाँ अकेली पड़ी रहने से शायद तुम्हारी दिल ऊबे ।"

और शैल के कुछ कहने के पहले ही रामनाथ फिर बोल उठा—"तुम्हें सुबोध के साथ में इसलिए रखना चाहता हूं कि उनकी इकलौती लड़की मनोरमा से तुम्हारी पट सकेगी। पिछले साल यहीं से बी० ए० किया है और आजकल महिला सघ में है। उसी के सिलसिले में तीन-चार दिन हुए बनारस गई है, उसके आते ही तुम्हारा उससे परिचय करा दूंगा ।"

"ठीक है। रुपया कमाने के लिए नहीं, पर अभी काम देखने के लिए ही मैं सुबोध जी के साथ प्रैक्टिस करना चाहती हूँ . .," शैल ने कहा—"पर अभी नहीं। एकाध सप्ताह बाद !"

"जब से तुम्हें सुविधा हो ," रामनाथ ने कहा, और चाय की आखिरी चुस्की लेकर प्याला ट्रे में रख दिया।

"और लीजिए !"—शैल ने चाय की केतली उठाते हुये कहा।

"इस समय मैं चाय पीता नहीं। यह तो वैसे ही पी ली . . ," रामनाथ ने कहा और क्षण भर की चुप्पी के बाद फिर बोला—"यहाँ तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं है ? अगर हो तो मैं भी चला आऊँ ।"

कहने को रामनाथ कह तो गया, पर मनमें डरने लगा कि अगर कहीं शैल ने उसे यहीं आने को कह दिया तो ? तब तो वह मुश्किल में पड़ जायेगा। न 'हाँ' ही करते बनेगा और न 'ना' ही। परेशान आँखों से उसने शैल की ओर देखा।

लेकिन शैल ने उसे उबार लिया। बोली—"कोई तकलीफ नहीं है भैया, मुझे यहाँ और जब कोई तकलीफ होगी तब आपको खुद ही बुला लूँगी ।"

रामनाथ ने छुटकारे और सन्तोष की साँस ली।

बोला—"नौकर तो सब बातें मानता है न ? खाना ठीक से और समय पर बनाता है न ?"

शैल ने कहा—"उसे अपने से अधिक मेरा ख्याल है। हाँ अगर वह न होता तब शायद आपको यहीं रहना पड़ता।"

"तब ठीक है ," कह रामनाथ उठ खड़ा हुआ—"रुपए हैं न अभी तुम्हारे पास ? न हों तो कुछ देता जाऊँ ।"

"रुपए तो हैं। अभी कल ही तो मैनेजर पाँच सौ रुपए दे गया है।" शैल ने कहा—"अभी तो इतने काफी हैं, और अगर जरूरत पड़ेगी तो मैं फोन कर दूँगी।"

"खैर, जब जरूरत पड़े तो फोन कर देना, या नौकर को भेज देना . ," रामनाथ ने कहा—"इस समय ये डेढ़ सौ रुपये और रख लो। पडे रहेंगे तो काम ही देंगे ।"

कह रामनाथ ने दस-दस के पन्द्रह नोट शैल की ओर बढ़ा दिये। जब शैल ने रुपए ले लिए, तब रामनाथ ने कहा—"नौकर पर जरा आँख रखना और पैसों के मामले में उसका विश्वास मत करना।"

"अच्छा, तो अब चलूँ, दो-तीन दिन बाद फिर आऊँगा।" कह रामनाथ बाहर की ओर चला।

शैल भी उसके साथ-साथ बाहर आयी।

बाहर, सड़क की बाँयी पटरी पर मर्करी कार खड़ी थी। रामनाथ को देखते ही शोफ़र ने कार का दर्वाजा खोल दिया।

कार में चढने के पहले रामनाथ सहसा ही शैल की ओर मुड़ पड़ा और बोला—"कार की तुम्हें तो अभी कोई जरूरत नहीं है न? अगर हो तो मैं इसे भिजवा दूँ, अपने लिए मैं 'हिन्दुस्तान' निकलवा लूँ .."

"अभी तो कोई जरूरत नहीं है ," शैल ने कहा—"हाँ, जब सुबोध जी के यहाँ जाना शुरू करूँगी, तब जरूर जरूरत पड़ेगी ।"

"अच्छा !" कह, रामनाथ कार में बैठ गया।

शोफर दरवाजा बन्द कर अपनी सीट पर जा बैठा। और दूसरे ही क्षण कार हंसिनी-सी तैरती हुई सड़क पर आगे निकल गई।

शैल ने अन्दर जाने के लिए पैर उठाया, पर वे जैसे वहीं जम गए थे, उठे ही नहीं। उसकी आँखें मोहन के दरवाजे पर जम गई थी।

और शायद हमेशा जमी ही रहती, यदि नौकर ने अन्दर से आवाज न दी होती—"बीबी जी !"

उसे नौकर पर खीझ हो आयी। उसे भी इसी समय बुलाना था। हसरत-भरी नजर उस दरवाजे पर डाल कर वह अन्दर लौट गई।

उसके कुछ बोलने के पहले ही वह बोल उठा—"ये रुपए आप यहीं छोड़ गई थीं। हवा की वजह से अगर इधर-उधर उड़ जाते ?"

शैल कुछ बोली नहीं। उसे रामनाथ की बात याद आ गई–'नौकर पर जरा आँख ही रखना और-पैसों के मामले उसका विश्वास मत करना।" और उसके होंठों पर व्यंग भरी मुस्कान फैल गई।

सेफ की ताली उसे देकर शैल बोली–"लो इसे सेफमें रख आओ।"

उसे परेशानी में देखकर शैल ने कहा—"इसमें भला इतना परेशान होने की क्या बात है। दुनियाँ विश्वास पर ही चलती है। मैं तुमपर अपने भाई से भी अधिक विश्वास करती हूँ, इसीलिए अपने सेफ़ की ताली तुम्हें दे रही हूँ।"

अब उसके लिए कहने को कुछ नहीं रह गया। चुपचाप वह अन्दर चला गया और रुपए सेफ़ में रख कर लौट आया।

चाभी लेकर शैल ने कहा—"जाकर किसी बढ़ई या लोहार को बुला लाओ। मेरे कमरेवाली खिड़कियाँ ठीक करानी है और उनमें छड़ें लगवानी हैं!"

"ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी ? खिड़कियाँ तो अभी बिल्कुल ठीक थीं!" सस्मित-सा बोल उठा वह।

"सड़क की ओर खुलनेवाली खिड़की टूट गयी है। उसमें और दूसरीवाली खिड़की में छड़ों का लगवाना जरूरी है।" शैल ने कहा।

"खिड़की टूट गयी है ? कब कैसे ?" पूछा उसने।

"इसे फिर कभी बताऊँगी। पहले तुम कारीगर लाकर उसे ठीक करा दो।" शैल ने कहा।

और तब वह चुप हो गया।

और चुपचाप बाहर कारीगर बुलाने चला गया।

शैल ने आराम कुर्सी पर लेट कर आँखें बन्द कर लीं।

१०

मोहन अपना सब कुछ लुटा कर उस युवती और अन्य घायलों के स.थ ऐम्बुलेन्स कार से शहर जनरल अस्पताल में लाया गया।

वहाँ उन लोगों की चोटों पर अच्छी दवा सावधानी से लगायी गई। मोहन और उस युवती के भी सिर की पट्टी बदल कर दूसरी दवा बाँधी गई। मोहन की कमर में शराब की-सी बदबूवाली कोई दवा मलकर एक इन्जेक्शन भी लगाया गया। इन्जेक्शन के लगाने के थोड़ी ही देर बाद उसे काफ़ी आराम मिला। ऐम्बुलेन्स के धक्के के कारण जो दर्द उमड़ आया था, वह दब गया।

और तब मोहन ने सिर घुमाकर इस छोटी-सी दुनियाँ को देखा, जहाँ रोज कोई न कोई आता है और कोई न कोई जाता है।

लोहे की काली-काली चारपाइयों की समानान्तर कतार लगी थी, जिस पर लाल-लाल कम्बल ओढे मरीज पड़े थे।

सहसा उसके दिमाग में एक बात आयी। यदि वह जिन्दगी भर इसी अस्पताल में पड़ा रहे, तो कैसा रहे! कम से कम रहने, खाने और कपड़े की चिन्ता से तो मुक्त हो जायेगा। तकादेवाले उसकी जान के पीछे तो नहीं पड़ेंगे।

लेकिन यह अस्पताल है, स्टेशन पर के मुसाफिरखाने की तरह, यहाँ कोई अधिक समय तक टिक नहीं सकता, चाहकर भी नहीं और आज या कल में इस बिस्तर को छोड़ देना पड़ेगा।

क्या कोई ऐसी तरकीब नहीं हो सकती कि मेरे सिर का घाव भरे नहीं और गहरा हो जाय, उसमें से मवाद-आने लगे और तब तक आता

रहे जब तक कि वह मर न जाय ?—सोचा मोहन ने। फिर आप ही जवाब भी दिया—ऐसा हो ही नहीं सकता। डाक्टर ऐसा होने ही क्यों देगा ? उसका घाव गहरा नहीं होने पायेगा और न उसमें मवाद ही आ सकेगा। और तब उसे फिर उन्हीं बर्बरों के बीच जाना पड़ेगा, जिनसे वह बचना चाहता है, दूर भागना चाहता है।

ऊपर से नीचे तक श्वेत वस्त्रों में लिपटी हुए श्वेत रंग की एक नर्स खट-खट करती हुई जा रही थी। वार्ड के दरवाजे पर जैसे ही वह आयी थी, मोहन ने उसे देख लिया था और उसी समय से सोचने लगा था कि इस गोरी-गोरी नर्स से सलाह ले कि नहीं।

और जब वह उसकी चारपाई के पास आ गई, तो उसके हाथ अपने आप उठ गए। उसे देख कर नर्स रुक गई। इशारे से अपने पास बुला कर उसने बैठ जाने को कहा। वह बैठ गई।

मोहन ने गौर से उसे देखा ? श्वेत वस्त्रों मे कसा हुआ उसका वक्ष मुक्ति पाने के लिए चीख रहा था। उसकी नीली-नीली आँखों की तह में उलझन, अजीब-सी गाँठ की शकल में, बन कर तैर रही थीं और ऊपर आने को अकुला रही थी।

मोहन को लगा कि यह नर्स भी उसी की तरह आकुल है। उसकी तरह उसका भी मन इस दुनियाँ से दूर, बहुत दूर, किसी इठलाती नदी के किनारे, प्यारे-प्यारे वृक्षों की प्यारी-प्यारी छाँव में, अपने मन के मीत के साथ, अपने तन और मन की अकुलाहट को शान्त करने के लिए भाग जाना चाहता था।

वह निराश हो उठा। जो खुद किनारा खोज रहा हो, वह क्या किसी को किनारे लगायेगा ? जो खुद भटक गया हो, वह दूसरों को राह पर कैसे लगायेगा ? जो स्वयं अतृप्त हो, वह दूसरों को भला कैसे तृप्त कर सकेगा ?

निराशा उसे जरूर हुई, पर नर्स के प्रति उसका मन सहानुभूति से

भर उठा। साथ ही उसके मन को जरा-सा बल भी मिला कि वही अकेला नहीं है जिसे दुनियाँ ने लूटा है, जिसकी कामनाओं को हिमालय पहाड़ के नीचे दबा दिया है। और भी हैं। एक नहीं, दो नहीं, बहुत, लाखों, करोड़ों।

और नर्स आश्चर्य की दृष्टि से मोहन की ओर देखती रही। उसे यह आशा थी कि मरीज उससे पूछेगा कि कल तक उसकी चोट ठीक हो जायेगी, कब वह यहाँ से जा सकेगा। पर वह तो जैसे कुछ बोलना ही नहीं जानता। बस चुपचाप उसे देखे जा रहा है, जैसे वह उसे अच्छी तरह जानता हो और आज लम्बी अवधि के बाद मिलने पर उसे पहचानने की कोशिश कर रहा है।

मोहन जो कुछ उससे कहना चाहता था भूल गया और तब अपनी झेप मिटाने और नर्स को कुछ का कुछ न सोच लेने देने के लिए उसका नाम पूछा।

नर्स की आँखें आश्चर्य से फैल गईं। तो क्या केवल उसका नाम पूछने के लिए उसने उसे बुलाया था ? लगता तो ऐसा नहीं। अब कोई दूसरी बात कहना चाहता था, पर कुछ सोच कर नहीं कह रहा है, उसे लगा।

उसने कुछ कहा नहीं, केवल अपना नाम बता दिया—ग्लोरिया वैलेन्टाइन !

बड़ा सुन्दर नाम है, कहने के लिए उसके होंठ खुलने ही वाले थे, पर उसने उसे दाँतों के नीचे दबा दिया और बोला—"मैं अक्सर बीमार पड़ता हूँ। इसलिए आप अपना पता बता दीजिए, ताकि जरूरत पड़ने पर आपको याद कर सकूँ।"

मोहन उसे बड़ा अजीब लगा, कुछ सनकी-सा, पर साथ ही भला भी। उसने अपना पता मुस्कुरा कर बता दिया और पूछा—"और कोई काम !"

"जी नहीं, धन्यवाद . !" मोहन ने अंग्रेजी में कहा।

नर्स मुस्कुराती हुई उठ खड़ी हुई और मुस्कुराती हुई वहाँ से चली गई।

मोहन उसे देखता रह गया।

उसी दिन शाम को लग-भग चार बजे, मोहन की आशंका ठीक उतरी। उसे 'डिस्चार्ज' कर दिया गया।

भरी आँखें और भरे मन से वह बाहर आया। देखा गेट पर ग्लोरिया खड़ी है। मोहन के होंठ मुस्कुरा उठे।

पास आने पर ग्लोरिया ने कहा—"तो आप जा रहे हैं ?"

"जी हाँ, जाना ही पड़ रहा है . !" मोहन ने कहा।

"क्या मतलब ?"

"अस्पताल छोड़कर इस बेदर्द दुनियाँ में लौट कर जाने की इच्छा नहीं थी।" मोहन ने कहा—"पर मजबूरी इन्सान से सब कुछ करा लेती है !"

"तो क्या आप का कोई नहीं है ?" ग्लोरिया के स्वर में आश्चर्य और दर्द था।

"जी नहीं, मैं बिल्कुल अकेला हूँ। अगर इस ट्रेन ऐक्सीडेन्ट में मैं मर जाता, तो मेरे नाम पर दो बूँद आँसू बहानेवाला भी कोई नहीं था !" कहते कहते मोहन का स्वर भारी पड़ गया।

कहने को वह कह तो गया, पर दूसरे ही क्षण अपने साहस पर उसे आश्चर्य करना पड़ा। दो पल की पहचान घनिष्ठता में बदल गई थी।

ग्लोरिया कई क्षणों तक चुप रही, मानों सोच रही हो कि कहे कि न कहे।

अन्त में उसकी झिझक को हार माननी पड़ी। धीरे से वह बोली—"अगर आपको आपत्ति न हो, तो आप मेरे यहाँ इस समय चले चलें। स्वस्थ हो जाने पर यदि आप जाना चाहेंगे तो मैं नहीं रोकूँगी ..।"

कपड़े के बन्डल को बगल में दबाकर मोहन ने उसे देखा। हिन्दुस्तानी लड़कियों की तरह जरा-सी भी झिझक नहीं, सकोच नहीं। दिल में बात आयी उसने कह दी।

तबियत तो हुई उसकी कि वह कहदे—चलो। पर दिल की बात जबान पर नहीं आ सकी। हिन्दुस्तानी सस्कार ने उसे अपने नीचे दबा दिया। पुरुष सर्व शक्तिमान है, स्त्री अबला है, निरीह है। स्त्री जन्म से ही पुरुष के सहारे रहती है, जीती है, फिर आज पुरुष कैसे किसी स्त्री का सहारा लेने जाय ?

धीरे से बोला—"धन्यवाद। अभी तो मैं एक बार फिर दुनियाँ मे जा रहा हूँ। सघर्ष तो करना ही पड़ेगा, यह निश्चित है। जीत हो या हार, आपके पास आऊँगा अवश्य !"

ग्लोरिया के बोलने के पहले फिर आप ही बोल उठा—"मुझे दुःख है कि आपकी बातें मैं नहीं मान सका। आशा है आप क्षमा कर देंगी।'

ग्लोरिया के मन को ठेस तो अवश्य लगी थी, पर उसे उसने छिपा लिया और बोली—"कोई बात नहीं। जब भी आपका जी हो, चले आइए। मेरे घर का दरवाजा आपके लिए हमेशा खुला रहेगा "

"धन्यवाद.. ," मोहन ने कहा—"अच्छा अब आज्ञा दीजिए !"

और मोहन चलने को हुआ।

"एक मिनट रुकिए ,' ग्लोरिया ने उसे रोका—"आप ने मेरा नाम और पता तो पूछ लिया, पर न तो आपने अपना नाम ही बताया और न पता ही।"

मोहन के उठते पाँव रुक गए।

उसने अपनी गलती महसूस की और बोला—"मेरा नाम मोहन है, नई बस्ती मे रहता हूँ, सेठ रामनाथ की कोठी के सामने .।'

"समझ गई. ,' ग्लोरिया ने कहा—'अगर आप मेरे घर का

रास्ता भूल जायेंगे तब मुझे ही आना पड़ेगा। किस समय आप घर पर मिलते हैं · ?"

मोहन अनायास ही हँस पड़ा। हँसते ही हँसते बोला—"मैं बेकार आदमी हूँ। इसलिए हर समय घर पर ही रहता हूँ। आप किसी भी समय आ सकती हैं। अच्छा अब आज्ञा दीजिए। गुडबाय !"

"गुडबाय· !" ग्लोरिया ने कहा।

और मोहन आगे बढ़ गया।

ग्लोरिया वहीं खड़ी रही और मोहन को तब तक देखती रही, जब तक कि वह आँखों से ओझल नहीं हो गया।

और जब उसकी धुँधली छाया भी नहीं दीख पड़ी, तब वह ठण्ढी साँस लेकर अन्दर चली गई।

अन्दर जाकर जब वह कुर्सी पर बैठी, तो उसे लगा कि इस समय वह प्राणहीन हो गई है। उसका प्राण तो उस घायल मोहन के साथ चला गया है, अब जाने मिले भी या न मिले। और तब अनायास ही उसका मन भर आया।

बसन्त के चले जाने पर फूलों का मन भर ही आता है

११

शैल अपने कमरे में चुपचाप बैठी थी। उदासी और घनीभूत पीड़ा के घन उसकी आँखों में छा रहे थे।

ऐसा क्यों हो रहा है? प्रयत्न करने पर भी वह अपने मन को मोहन के बारे में सोचने से क्यों नहीं रोक पा रही है? यही नहीं जितना ही वह अपने मन को मोहन की ओर से हटाने की कोशिश करती है, उतना ही वह उसकी ओर आकर्षित होता जा रहा है। इन सब का कोई सन्तोषजनक कारण उसकी समझ में नहीं आ रहा था।

कल रात से ही वह परेशान है। वह सोच नहीं पा रही थी कि आखिर वे कहाँ चले गये। कहीं यह शहर ही छोड़कर तो नहीं चले गए? लगता तो कुछ ऐसा ही है, नहीं तो अब तक वापस न आ गए होते।

कई बार नौकर से कहने को इच्छा हुई कि वह जाकर पता लगाए कि आखिर वे कहाँ चले गए, पर अपनी मर्यादा का ख्याल कर चुप रह गई। न जाने क्या सोच ले अपने मन में!

और आज सुबह से उस बन्द दरवाजे की ओर आँखें गड़ाए बैठी है। सुबह बीती, दोपहर भी ढल गई और शाम होने को आयी, पर दरवाजा वैसे ही बन्द रहा। मोहन का कहीं भी पता नहीं था।

शैल का मन आशंकाओं से भर गया। अवश्य ही वे कहीं चले गए, यह मुहल्ला छोड़कर, कोठरी छोड़कर, उसे छोड़कर। अगर उस दिन उसे देखकर उसने खिड़की बन्द न की होती, तो शायद वे न जाते। अपमान कहने पर भी वह चाहती है कि मोहन उसकी आँखों के सामने बना रहे, कहीं आये नहीं, कहीं जाये नहीं।

शैल ने अपनी भींगी-भींगी आँखें ऊपर उठायीं।

नौकर सिहर उठा।

शैल बोली—"कोई खास बात नहीं है।"

"पर आपकी आँखें बता रही हैं कि आप इस समय किसी गहरी पीड़ा से पीड़ित हैं· ·," उसने कहा—"अगर बताने लायक हो, तो बता दीजिए, मैं उसे दूर करने की कोशिश करूँगा।"

शैल को लगा कि जिस भेद को वह अपने दिल की गहराइयों में छिपा कर रखना चाहती थी, वह उसके नौकर पर खुल गया। वह चाहकर भी न छिपा सकी। 'आँखों ने उसके मन की सारी बातों को उससे कह दिया।

उसे बड़ी शर्म महसुस हुई। इतनी कि उसकी पलकें झुक गईं और वह चाहकर भी कुछ न बोल सकी।

नौकर ने समझा कि शैल उसे बतना नहीं चाहती, इसलिए वह भी चुप हो रहा।

थोड़ी देर की खामोशी के बाद शैल ने पूछा—"तुम्हें कुछ मालूम है, मोहन बाबू आजकल कहाँ गये हैं· ·?"

मोहन!

नौकर के मन को झटका-सा लगा। उसने गौर से शैल को देखा। देखा और मन ही मन मुस्कुरा पड़ा। बीमारी उसकी पकड़ में आ गई थी।

बोला—"दो दिन से तो मैंने भी नहीं देखा है। गए होंगे कहीं रूपयों के इन्तजाम में, क्योंकि उन्हें तकादेवाले बहुत तंग कर रहे हैं।"

"तो तुम्हें भी ठीक ठीक पता नहीं· ·।" शैल ने धीरे से कहा।

"जी नहीं· ·," नौकर शैल के मन का भय काँप गया था—"पर वे एकाध दिन में अवश्य आ जायेंगे· ·।"

शैल ने अविश्वास से उसकी ओर देखा।

"आप यकीन मानिए, बीबी जी ! वे इस कोठरी कोड़कर कहीं नहीं जायेंगे, कहीं जा नहीं सकते ··।" उसने कहा।

शैल ने प्रश्न सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"और वे जायेंगे भी कहाँ ? किसके पास जायेंगे ? इस दुनियाँ में उनका 'अपना' कहनेवाला कोई नहीं है ·।"—उसने बताया।

शैल के कलेजे में हूक-सी उठी।

आँखें अनायास ही भरभरा आयीं, जिसे छिपाने के लिए उसने अपना सिर झुका लिया और चुपचाप बेमन से नाश्ता करने लगी।

नौकर चुप हो रहा। कुछ बोला नहीं।

उसकी आँखें भी खिड़की के बाहर मोहन के बन्द दरवाजे पर जा लगीं, आर थोड़ी देर बाद वहाँ से हटने ही वाली थीं कि फिर रुक गईं।

मोहन रिक्शे पर से उतर रहा था।

"बीबी जी !"—वह चीख सा पड़ा।

शैल ने चौंक कर अपनी आँखें ऊपर उठायीं।

"बीबी जी, मोहन·· !"

मोहन !

सुनते ही शैल के मन के सारे तार झनझना उठे।

मुड़कर उसने भी खिड़की के बाहर देखा।

देखा कि सिर में पट्टी बाँधे, लंगड़ाता हुआ मोहन अपनी कोठरी के दरवाजे की ओर बढ़ा जा रहा है।

उसका मन प्रसन्नता की हिलोरों में खो गया, फिर सिर की पट्टी का ध्यान आते ही वे हिलोरें फिर खो गईं।

कहीं चोट लग गई क्या ? पर कैसे ? कहाँ ? कब ?

उसने नौकर की ओर देखा और हौले से कहा—"तुम जल्दी से उनके पास जाओ तो और पूछो कि कैसे चोट लग गयी उन्हें। कहीं ज्यादा चोट तो नहीं आयी है ?"

वह उसकी बात समाप्त होते-होते ही कमरे के बाहर निकल गया।

मोहन दरवाजा खोल कर अन्दर गया और झूलेदार चारपाई को गिराकर चुपचाप लेट गया।

उसके लेटने के दो ही क्षण बाद शैल का नौकर आया।

उसकी पग-ध्वनि सुनकर मोहन चौंक कर बैठा। उसे लगा कि तगादे वाले आ गये हैं।

पर शैल के नौकर को देखकर उसने सन्तोष की साँस ली और मुस्कुराकर पूछा—"कहो भाई कैसी तबियत है? तुम्हारी औरत तो मजे में है न? और बच्चा कैसा है?"

उसकी चारपाई के पास आकर उसने कहा—"मेरे यहाँ तो सब मज़े में हैं। आप अपनी कहिए। यह सिर में पट्टी कैसी बाँध रक्खी है?"

"थोड़ी सी चोट लग गई है" मोहन ने कहा।

"चोट लग गई? कैसे? किसी से झगड़ा हो गया था क्या? ..." एक साथ ही कई प्रश्न पूछ बैठा वह।

मोहन मुस्कुरा पड़ा। बोला—"झगड़ा हम जैसे लोग नहीं कर सकते, भाई। रात जिस गाड़ी से आ रहा था, वह उलट गई! उसी में यह चोट आ गई है।"

"ओह! केवल सिर में ही लगी है या और कहीं?"—सहानुभूति भरे स्वर में पूछा उसने।

"थोड़ी सी चोट कमर में आई है, पर अब वह ठीक है ...." मोहन ने कहा—"और यह सिर का घाव भी दो-चार दिन मे ठीक हो जायगा ..।"

"अगर कोई जरूरत हो तो मुझे मत भूलियेगा, मैं अस्पताल से आप के लिए दवा ला दिया करूँगा, कमरा साफ कर दिया करूँगा और

जो भी काम हो, सब कर दूँगा. ."—उसने कहा—"आप किसी भी तरह का संकोच मत कीजिएगा, नहीं तो मुझे दुःख होगा .।"

मोहन मुस्कुराया। बोला—"इस मुहल्ले में तुम्हारे सिवा मेरा और कौन है ? जरूरत के वक्त तुम्हें न याद करूँगा तो किसे करूँगा ?"

"इस समय अगर किसी चीज की ज़रूरत हो तो कहिए, नहीं तो चिराग़ जलने के समय फिर आऊँगा ।"—उसने पूछा।

"अच्छा। इस समय कोई काम नहीं है। मैं केवल आराम करूँगा ।"—कह, मोहन लेट गया

"उठिए, मैं बिस्तर लगा दूँ, ताकि आराम से आप लेटें ।" उसने कहा।

मोहन मुस्कुरा पड़ा। बोला—"न तो चारपाई ही इसी क़ाबिल है कि इस पर बिस्तर लगाया जा सके और न मेरे पास बिस्तर ही है ।"

शैल के नौकर का मन भर आया। इतनी तक़लीफ तो शायद आज के किसी भिखारी को भी न होगा।

क्षणभर तक वह मोहन को देखता रहा, फिर तेज़ी से बाहर निकल गया।

उसके जाने के बाद मोहन ने हाथ बढ़ाकर खिड़की खोली। खिड़की खुलते ही उसकी दृष्टी अपने कमरे की खिड़की पर खड़ी शैल पर पड़ी, जो उसी ओर भींगी भींगी आँखों से देख रही थी।

शैल कई क्षणों तक उसे अपलक निहारती रही। निहारती रही और उसकी आँखें भीगती रहीं और जब इतनी भींग गईं कि बरस पड़ेंगी, तब वह खिड़की पर से हट आयी।

भारी मन में आरामकुर्सी पर बैठकर उसने अपनी आँखें पोछ लीं और नौकर के लौटने की प्रतीक्षा करने लगी।

उसने आकर बताया कि ट्रेन के उलट जाने से उन्हें सिर और कमर में चोट आयी है। लेकिन लगता है कि इतनी ही चोट उन्हें

नहीं लगी है, और भी कहीं गहरी चोट लगी है, जो ऊपर से दिखाई नहीं पड़ती और न उन्हों बताया ही।

शैल का मन मोहन के पास जाने के लिए, उसे सान्त्वना देने के लिए, चोट और पीड़ा को भुलवा देने के लिए तड़प उठा। तड़प उठा और तड़प कर रह गया।

धीरे से कहा—"देखना, उनका ख्याल रखना। किसी तरह की तकलीफ न होने पाये।"

"बहुत अच्छा! ..."—कह वह शैल को अकेली छोड़कर जाने ही वाला था कि मोहन की कोठरी में से आते शोर-गुल को सुन कर रुक गया।

हौले से वह शैल के साथ खिड़की पर आया।

देखा तकादेवालों ने उसके दरवाजे को घेर रक्खा।

मोहन कह रहा था—"आप लोगों के पैसों का इन्तजाम हो गया था, पर गाड़ी उलट जाने के कारण मैं बेहोश हो गया और उसी बेहोशी में लगता है मेरी जेब से किसी ने रुपए निकाल लिए ...।"

"हमें चरका देने की कोशिश मत कीजिए, मोहन बाबू! आप की जेब कटी हो या न कटी हो, हमें अपने पैसे चाहिये और आज ही, अभी ही ...!"—होटल वाले ने कहा।

हाथ नचा कर कोठरी की मालकिन ने मोहन के कुछ बोलने से पहले ही कहा—"यह कोठरी तुम्हारे बाप ने बनवाई थी क्या, जो किराया नहीं दे रहो? आज तुम्हें एक-एक पाई देनी होगी, याद रक्खो! ..."

मोहन ने उस बुढ़िया की ओर देखा और बोला—"आप सब के पैसे मिल जायेंगे। जैसे इतने दिन आप लोगों ने सब्र किया है वैसे ही थोड़े दिन और सब्र कीजिए। मैं सब की एक-एक पाई चुकती कर दूँगा! ..."

लोदई साव गरज पड़े—"सब्र करनेवाले साले की ऐसी-तैसी! ..

हराम का पैसा नहीं है जो सब्र कर लूँ। चाहे जैसे हो, हमारा हिसाब आज साफ कर दो ।"

मोहन ने कहा—"आप लोगों से मैं दया की भीख मागता हूँ। मुझे थोड़ी सी मुहलत और दीजिए। मैं वादा करता हूँ कि जब तक आप लोगों के पैसे नहीं दे दूँगा, चैन, से नहीं बैठूँगा · !"

पर उसकी आवाज तकादेवालों के शोर-गुल—"नहीं-नहीं, हम आज ही अपना पैसा लेगें तुम्हें इसी समय हमारा हिसाब साफ कर देना होगा" में खो गई।

मोहन को लगा जैसे वह इन्सानों के बीच नहीं, बर्बर दरिन्दों के बीच खड़ा है, जिनके दिल नहीं है, जो केवल चूसना जानते हैं, हत्या करना जानते हैं।

और तब वह.चीख उठा—"इस समय मेरे पास पैसा नहीं है। मैं नहीं दे सकता। जब होगा, तब दूँगा। और जिसे आज लेना है, वह मेरी कोठरी से वसूल कर ले ।"

उसकी चीख सुनकर तकादे वाले सन्नाटे में आ गए और उसकी ओर अचकचा कर देखने लगे।

मोहन ने एक बार उन्हें देखा और फिर अपनी कोठरी की ओर। उनकी आँखें भर आयीं। उनका मन जोर-जोर से रोने को हो रहा था।

उसके पाँव झटके से उठे। किसी की हिम्मत नहीं हुई उसे रोकने की। वह लँगड़ाता हुआ आगे बढ़ गया।

शैल खिड़की की ओट में हो गई, ताकि मोहन उसे न देख सके।

और जब वह सिर झुकाए हुए आगे बढ़ गया, तब शैल नें चुपचाप सेफ की चाभी नौकर के आगे बढ़ा दी।

उसने शैल की ओर क्षण भर के लिए देखा और फिर चुपचाप ताली लेकर सेफ़ की ओर तेजी से बढ़ा।

तकादेवाले कई क्षणों तक प्रस्तर प्रतिमा की तरह खड़े रहे। थोड़ी

देर बाद तन्द्रा भंग होने पर वे जैसे ही कोठरी में घुसने जा रहे थे कि पीछे से शैल के नौकर की कर्कश आवाज आई—"खबरदार, अगर किसी ने एक पैर भी कोठरी के अन्दर रक्खा। एक-एक को जेल की हवा खिला दूँगा!

उनके उठे पैर उठे ही रह गए।

पास आकर उसने कहा—"पीछे हटो!"

सब उसकी ओर आश्चर्य से देख रहे थे।

उन्हें वहीं खड़े देखकर वह फिर चिल्लाया—"पीछे हटो, नहीं तो सबकी हरमजदगी भुला दूँगा ·!"

और वे सहम कर पीछे हट गए।

लोदई साव सबके आगे थे। उसी से उसने पहले पूछा—"तेरे कितने रुपए हैं ?"

"ग्यारह रुपए चार आना··।"—लोदई साव ने कहा।

"यह लो बारह रुपए। निकालो बारह आना··।"—दस रुपए का एक नोट और एक-एक रुपए के दो नोट उसकी ओर बढ़ा कर उसने कहा।

नोट लेकर उसने कहा-"बारह आने पैसे अभी भेज देता हूँ!· "

"अभी निकालो बारह आने नहीं तो वह जूता मारूँगा साले कि गंजी खोपड़ी पिलपिली हो जायेगी "—उसने कठोर स्वर में कहा।

और तब लोदई साव ने अपनी सारी जेबों को तलाश कर उसे बारह आने पैसे चुपचाप दे दिए।

"भाग जाओ अब यहाँ से! और अब कभी सूरत मत दिखाना ··।"

लोदई साव चुपचाप खिसक गए।

लोदई की बगल में कोठरी की मालिकन खड़ी थी।

"तू तो मोहन बाबू की नानी लगती है न? फिर भी तुझे उनकी दशा पर तरस नहीं आया? चुड़ैल कहीं की·· ·"—उसने कहा—"मर

जायेगी तो क्या सारे रुपए अपने साथ लेती जायेगी! बोल कितने रुपए तेरे हैं?"

"दो कम पचास रुपया..."—बुढ़िया ने धीरे-से कहा।

"यह ले और कल सफाई की रसीद मुझे दे जाना..."—रुपए देकर उसने कहा—"और अब किराया मुझसे माँगना, मोहन बाबू से नहीं। समझी? नहीं तो किसी दिन तेरा गला घोंट दूँगा...।"

बुढ़िया डर गई। उसे लगा कि वह उसका गला घोंटने के लिए आगे बढ़ा आ रहा है। डर कर वह वहाँ से तेजी से चली गई।

होटल के मैनेजर से उसने पूछा—"तुम्हारे कितने रुपए हैं? ठीक-ठीक बताना, नहीं तो याद रक्खो, मैं बहुत बुरा आदमी हूँ। खून करने से भी नहीं डरता...!"

डर कर होटलवाले ने कहा—"पिछले तीन महानों का हिसाब है। नब्बे रुपये खाने के और पन्द्रह रुपए चाय और सिगरेट के!..."

"कुल कितने हुए...?"

"एक सौ पाँच रुपये...!"

"इसमें तेरा मूल मुश्किल से तीस-चालीस रुपया होगा और इतने के लिए ही तू गुण्डई पर उतर आया था!..."

होटल के मैनेजर के होंठ हिलकर रह गए। डर की वजह से उसके मुँह की आवाज बाहर नहीं निकली।

"तुम्हारे पैसे मैं नहीं काटूँगा। यह लो एक सौ पाँच रुपए..." रुपए देकर उसने कहा—"लेकिन रुपयों के लिए जानवर मत बन जाया करो, वरना किसी दिन कोई मुँह कुचल कर रख देगा। समझे?..."

वह कुछ बोला नहीं, चुपचाप वहाँ से खिसक गया।

अब केवल दूधवाला रह गया था।

"इतने में तुम ही केवल आदमी दीख रहे थे और सब तो शैतान बन गए थे"—सैल के नौकर ने कहा—"कितने पैसे हैं तुम्हारे?"

"थोड़े-से ही हैं। मिल जायेंगे कभी · ·"—दूधवाले ने कहा।

"नहीं तुम भी ले लो भाई। आजकल पैसों की जरूरत सभी को है·· "—उसने कहा—"बोलो, कितने दूँ?"

"तीन रुपया साढे पाँच आना····"—कहा उसने और मिलने पर 'राम-राम' कर चला गया।

क्षण भर तक वह वहीं खड़ा रहा, फिर दरवाजा उठका कर शैल के पास चला आया।

शैल खिड़की पर से हट कर अन्दर आ गई थी।

"दो सौ रुपये ले गया था। सबको दे देने के बाद बत्तीस रुपया साढे छः आना बचा है "—उसने कहा।

"रख दो। "—शैल बोली।

रुपये सेफ में रख कर उसने ताली शैल को दे दी।

थोड़ी देर तक वह शैल के पास खड़ा रहा, पर शैल को कुछ सोचती-सी देखकर चुपचाप बाहर निकल गया।

शैल की आँखें खिड़की से बाहर निकल कर आकाश पर जा लगी थीं।

दिन धीरे-धीरे उतर रहा था।

१२

मोहन सिर झुकाए चुपचाप चला जा रहा था। उसके मन में जोरों की आँधियाँ उठ रही थीं। अगर यही जिन्दगी है, तो अब वह इससे ऊब चुका है। अब वह एक दिन के लिए क्या, क्षण भर के लिए भी नहीं जीना चाहता। काश, उसे मौत आ जाती! काश, ये चलती-फिरती गाड़ियाँ उसके सीने पर से गुजर जाँय और वह उनके नीचे पिस कर रह जाय, ताकि रोज-रोज के कष्ट, अपमान, तिरस्कार और प्रतारणा से उसे मुक्ति तो मिले!

पर वह इस दुनियाँ को, इस बेदर्द दुनियाँ के नियमों को अच्छी तरह जान चुका है। यहाँ जो जीना चाहते हैं, वे नहीं जी पाते! और जो नहीं जीना चाहते, उन्हें जीना पड़ता है!

सोचता हुआ, विचारों में बहता हुआ वह चला जा रहा था। अपने में वह इतना खो गया था कि कई जगह वह राहियों से, पटरी की छाती पर गड़े खम्भों से टकरा गया। थोड़ी देर के लिए उसकी विचार-धारा टूटती, लेकिन आगे बढ़ने पर वह फिर उसी रौ में बहने लगता।

चलते-चलते उसके पैर सहसा शराब की दूकान के आगे रुक गए। सिर घुमाकर देखा, दरवाजे की बगल में साइन-बोर्ड लगा हुआ था—देसी शराब की दूकान!

शराब!

इसके नशे में आदमी भूल जाता है, दुःख, दर्द, पीड़ा, व्यथा, अपमान, प्रतारणा! जब तक नशा रहता है, वह सुख के संसार में फिरता रहता है।

तो वह क्यों न थोड़ी देर के लिए दुःख, पीड़ा और अपमान को भूलकर सुख के संसार में पहुँच जाय ? सोचा मोहन ने और सोचकर जेब में हाथ डाला।

इस समय कुल दो रुपये दो आने उसकी जेब में थे। भला इतने पैसों से वह क्या सुख के संसार की सैर कर सकेगा ? यहाँ भी रुपया चाहिए। आदमी को शराब पीने के लिए, यहाँ तक कि ज़हर खाने के लिए भी रुपया चाहिए, जो उसके पास नहीं है।

कई क्षणों तक वह वहीं खड़ा-खड़ा ललचाई दृष्टि से अन्दर देखता रहा, जहाँ से बोतलों की खनखनाहट, चुक्कड़ों की आवाज, झूमती हुई आ रही थी, फिर झटके से आगे बढ़ गया। उस छाया के पीछे भागने से क्या लाभ, जिसे वह पकड़ नहीं सकता ?

आगे बढ़ा तो बढ़ता ही गया, बढ़ता ही रहा, जैसे अब वह कभी पीछे नहीं लौटेगा, भूलकर भी नहीं।

दिन ढलते-ढलते ढल गया।

अँधेरा चारों ओर छाने लगा, पर वह उतना गहरा और भयानक नहीं था, जितना उसके मन में छा गया अन्धकार।

थक कर वह बगल के बाग में बैठ गया। बिजली की रोशनी में नहाते उस आकर्षक बाग़ को उसने देखा, जो सुबह की ओस की तरह मासूम और मादक था।

दिन के ढलते ही सर्दी बढ़ने लगी थी, इसलिए बाग़ में घूमने के लिए आए हुए लोग भी धीरे-धीरे वापस जाने लगे।

पर मोहन बैठा रहा, चुप-चुप-सा, खोया-खोया-सा। वह सोच नहीं पा रहा था कि अपनी कोठरी में वह लौट कर जाये कि नहीं, क्योंकि वह जानता था कि उसके तगादेदार उसे इतनी आसानी से छोड़नेवाले नहीं है। वे वहीं बैठे होंगे और जब वह वहाँ पहुँचेगा तब वे फिर उसे नोचने लगेंगे।

लेकिन सर्दी बढ़ती जा रही थी और उस बढ़ती हुई सर्दी में वहाँ बैठा रहना उसे असंभव-सा जान पड़ा।

और तब मन मार कर वह खड़ा हुआ और जैसे ही वह वहाँ से चलने को हुआ कि उसकी दृष्टि एक आधुनिक युवक के साथ अपनी ओर आती उस सांवली युवती पर पड़ी, जिसे उसने टूटे हुए इन्टर क्लास के डिब्बे से निकाला था।

उसकी नज़र से वह छिपने ही जा रहा था कि युवती की भी दृष्टि उस पर पड़ गई। उसकी चाल में क्षण भर के लिए उलझन पैदा हुई, लेकिन दूसरे ही क्षण वह तेज़ी से मोहन की ओर आयी।

मोहन उसे आश्चर्य से देखता ही रह गया।

पास आकर उसने उलहने-भरे स्वर में कहा—"वाह मोहन बाबू, अस्पताल से आते समय आपने मुझे बताया तक नहीं ! मैं तो चिन्तित हो रही थी, पर डाक्टर से मालूम होने पर कि आ अपने घर चले गए हैं मैं, कुछ आश्वस्त हुई ."

मोहन का मन हुआ कि कह दे कि आपसे बताने की कोई आवश्यकता मैंने नहीं समझी, इसलिए चली आयी, पर कह नहीं सका। बोला—"अस्पताल से उतनी ही देर में मेरी तबियत ऊब गई थी, इसलिए वहाँ से भागने की जल्दी में आपको बिलकुल भूल गया, नहीं तो आते समय आपको अवश्य बताता .."

युवती ने उसका विश्वास कर लिया। वह अन्तर्यामी तो थी नहीं कि जान जाती कि वह सफेद झूठ बोल रहा है। अस्पताल से तो उसकी तबियत नहीं ऊबी थी, बल्कि उसे उससे नेह सा हो गया था और वह भी इतना नेह कि जिन्दगी भर वहाँ, अस्पताल की उसी काली-काली-सी चारपाई पर पड़ा रहना चाहता था।

"कोई बात नहीं। आप मिल गए, मेरी शिकायत दूर हो गई !"—कह वह मुस्करा पड़ी।

उसके साथवाला युवक अभी तक चुप-चुप खड़ा, परेशान-सा मोहन को देख रहा था, जैसे उसे मोहन की उपस्थिति बहुत ही खल रही हो।

मोहन के कुछ कहने के पहले ही वह बोल उठा—"मिस मनोरमा! आपने हमें इन्ट्रोड्यूस तो किया ही नहीं ।"

"ओह, आइ ऐम वेरी सारी! "—मनोरमाने अपनी भूल के लिए क्षमा माँगी और फिर दोनों का परिचय करा दिया।

मोहन ने अपने सामने खड़े युवक को देखा, जिसका नाम मनोरमा ने निरंजन बताया था और जिसने अभी-अभी बैरिस्टरी करनी शुरू की है।

निरंजन ने सीधे-सादे कपड़ों में उलझे हुए मोहन को देखा, जिसने मनोरमा की प्राण-रक्षा की है (जैसा स्वय मनोरमा ने कहा है)।

"ग्लैड टू मीट यू प्लीज ! "–कह, निरंजन ने अपना हाथ बढ़ाया।

हाथ मिलाकर मोहन ने कहा—"थैन्क्स।"

मनोरमा बोली—"लगता है कि आप यहीं पास ही में रहतें हैं ··!"

"जी नहीं! जहाँ मैं रहता हूँ, वह जगह यहाँ से अगर अधिक नहीं तो मील भर दूर तो होगा ही "—मोहन ने कहा।

मनोरमा के कुछ कहने के पहले फिर बोंल उठा—"अच्छा अब आज्ञा दीजिए, चलूँगा! "

"वाह, यह कैसे हो सकता है! मेरा बँगला नजदीक ही है। आपको वहाँ तक चलना ही होगा। क्यों मिस्टर निरंजन?" मनोरमा बोली।

"मिस मनोरमा बिल्कुल ठीक कहती ने "—निरंजन ग्रामोफोन रेकार्ड की आवाज में बोला।

"पर मुझे जरा जल्दी है "

मोहन की बात बीच ही में काटकर मनोरमा बोली—"मैं कार से आपको छोड़ आऊँगी। अब तो आपको न नहीं कहना चाहिए।"

मोहन कुछ बोला नहीं। चुपचाप खड़ा रहा। मनोरमा आकर्षक है

और वह भी इतनी कि युवकों को चुम्बक-लोहे की तरह अपनी ओर खींच लेती है। यही कारण था कि ट्रेन में घायल होने पर भी वह उनको अपने सीने से दबा लेने को आकुल हो उठा था और दबा भी लिया था।

और आज तो वह और भी आर्पक लग रही है। गालों पर पाउडर की हलकी-सी परत है। आखों में काजल है। होठों पर लिपिस्टिक है। साड़ी पर इत्र की बूँदें हैं। इन सब ने मिलकर उसकी जवानी को इतना मादक बना दिया था कि अपने मन रोकना उसके लिए असमव ही हो जायगा।

वह यह नहीं चाहता। वह यह जानता है कि इससे उसकी अतृप्त कामनायें थोड़ी देर के लिए तृप्त अवश्य हो जायेंगी, पर साथ ही साथ वह यह भी समझता है कि यह मनोरमा न उसकी प्रेमिका है और न उसकी पत्नी, जो केवल उसी की बनी रहेगी। वह तो तितली है, अभी इस फूल पर, थोड़ी ही देर बाद दूसरे फूल पर। आज उस पर उनका मन आ गया है, उसे जबर्दस्ती अपने बँगले लिया जा रही है और जब कल उसकी तबियत उससे उब जायेगी तब वह उसकी ओर देखेगी भी नहीं और अगर देखेगी भो तो न देखने का अभियन करेगी।

और जब कल उसकी ओर वह देखेगी नहीं तो उसकी कामनाओं की भूख और भी बढ़ जायगी तब वह शायद पागल हो उठेगा और उस पागलपन मे वह जाने क्या क्या कर बैठे।

इससे अच्छा तो यही है कि वह उसके पास न जाय, कभी भी न जाय...... ...

इस निश्चय पर वह पहुँग ही रहा था कि मनोरमा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—

"क्या सोचने लगे आप ? आइए चलिए !"

और तब उसके निश्चय की दीवाल लड़खड़ा कर गिर पड़ी। वह मंत्र-मुग्ध सा उसके पीछे-पीछे कार तक आया।

दरवाजा खोल कर उसने मोहन से कहा—"बैठिए।"

मोहन ने क्षण भरके लिए उसे देखा। उसके होंठ दोनों ओर थोड़े-थोडे खिंचे हुए थे। अवश सा वह कार में बैठ गया।

"तुम भी बैठो, निरंजन !"—मनोरमा ने उससे कहा।

"धन्यवाद। इस समय मैं आप लोगों के साथ नहीं जा सकूँगा. "—निरंजन ने कहा—"अभी मुझे एक जरूरी काम याद आ गया है, वहीं जा रहा हूँ।"

मनोरमा के होंठ और खिंच गए। ऐसे समय में अचानक ही आ गए जरूरी काम का मतलब वह खूब समझती है।

बोली—"कोई बात नहीं। पर कल जब आइएगा तो अपने सारे काम निपटा कर!"

"जरू . !" कह वह आगे बढ़ गया।

"मिस्टर मोहन आगे आकर बैठिए!"—मनोरमा ने अपने बगल की सीट की ओर इशारा करके कहा।

"मैं यहीं ठीक हूँ . ।" मोहन ने कहा।

मनोरमा ड्राइविंग सीट पर बैठ गई और मोहन की ओर सिर घुमाकर मुस्कराते हुए बोली—"क्यों, डर लगता है क्या .?"

"डर? जी, नहीं तो और फिर आपसे क्यों डर लगेगा .?" मोहन ने अचकचा कर कहा। वह नहीं जानता था कि यह इतनी तेज होगी। उसकी तेजी की जो कल्पना उसने की थी, वह उससे बहुत आगे थी।

मनोरमा ने मुस्कुरा कर कार स्टार्ट की।

सड़क की पटरियों पर गड़े खमे और उन खम्भों के पीछे खड़े मकान पीछे भागने लगे। मोहन चुपचाप इस भाग-दौड़ को देख रहा था। उसः

समय उसके दिमाग़ में न तो अपनी कोठरी थी, न तगादे वाले थे, न शैल थी, न मनोरमा थी। कुछ भी नहीं था। बिल्कुल शून्य। सन्नाटा!

और जब कार एक छोटे-से बँगले के पोर्टिको मे रुकी, तब वह शून्य से बाहर निकल आया। मनोरमा के दरवाज़ा खोलने के पहले ही वह नीचे उतर आया।

मनोरमा ने कहा—"पापा आपसे मिलने को बहुत उत्सुक हैं। उनसे पहले आप मिल लें। फिर मैं आपको अपने कमरे में लिवा चलूँगी ।'

मोहन ने खोज-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा, जैसे जानना चाहता हो कि अपने कमरे में लिवा चलने का क्या मतलब है?

"आइए. " कह, मनोरमा आगे बढ़ी।

मोहन उसके पीछे-पीछे चलने लगा।

रीडिंग रूम में मनोरमा के साथ-साथ उसके पाँव भी रुक गए।

उसने कुर्सी में धँसे हुए एक अधेड़ व्यक्ति को देखा, जो कानून की कोई किताब पढ़ रहा था। वह समझ गया कि यही मनोरमा के पापा हैं।

"पापा...!"—उनकी कुर्सी के पास जाकर मनोरमा ने पुकारा।

उन्होंने अपनी आँखें ऊपर उठायीं, और मुँह से सिगार निकाल कर कहा—"यस मनो?"

मोहन की ओर इशारा करके उसने कहा—"आप ही मिस्टर मोहन हैं, जिन्होंने मेरी प्राण-रक्षा की थी !"

"ओह, ग्लैड टू सी यू मिस्टर मोहन " मनोरमा के पापा ने कहा—"आई ऐम रियली वेरी ग्रेटफुल टू यू मिस्टर, रियली वेरी ग्रेटफुल!"

मोहन कुछ बोला नहीं, केवल मुस्कुरा दिया।

उन्होंने समझा कि शायद मोहन अंग्रेजी नहीं समझता इसलिए 'हिन्दुस्तानी' में कहा—"मनो अपने सेवियर को ऊपर ले जाओ और उनकी खातिर करो...!" -

"वहुत अच्छा, पापा "—मनोरमा ने कहा—"आइए, मिस्टर मोहन .. !"

मोहन उसके साथ हो लिया।

ऊपर के एक सजे हुए कमरे में पहुँच कर मनोरमा ने कहा—"यही मेरा कमरा है। आप तशरीफ रखिए, मैं अभी आती हूँ !"

मोहन सोफे पर बैठ गया और उसकी दृष्टि कमरे में इधर-उधर घूमने लगी। खिड़की के पास रेडियो रक्खा था और रेडियो पर चाँदी के फ्रेम में मनोरमा की तस्वीर।

मनोरमा के आने में जब उसने देर देखी तो वह उठकर रेडियो के पास आया। दीवाल पर लगी घड़ी की ओर देखकर उसने इलाहाबाद स्टेशन लगाया। वहाँ मिले-जुले गानों की रेकर्डिंग हो रही थी।

मनोरमा की फोटो उठाकर उसने क्षण भर के लिए देखा। उसकी तस्वीर उससे दुगुनी सुन्दर, आकर्षक और मादक थी। यूनिवर्सिटी के लड़कों को मर मिटने के लिए उसकी तस्वीर ही काफी थी।

तस्वीर को वह रखने ही वाला था कि उसकी निचली उँगली से फ्रेम कुछ सरक गया और उसके देखते ही देखते बहुत से युवकों के फोटो जमीन पर गिर पडे, जिन्हें शायद मनोरमा ने स्वयं खिचवाया था, क्योंकि सभी तस्वीरों में वह भी थी।

उसने कुल तस्वीरों को गिना। पन्द्रह थीं। वह मुस्कुराया। तो वह शिकार नम्बर सोलह है और जब मनोरमा उससे आँखें फेर लेगी, तो उसकी तस्वीर भी इन्हीं तस्वीरों के पास आ जायेगी।

सारी तस्वीरों को फ्रेम में रखकर सावधानीसे उसे उसी स्थान पर रख दिया और चुपचाप सोफे पर बैठ गया।

उसके बैठने के पाँच-सात मिनट बाद मनोरमा आई। उसके पीछे-पीछे बैरा भी ट्रे में खाने और पीने की चीजें लेकर आया।

"उस बड़ी मेज पर सजा दो..."—मनोरमा ने कहा—"और बाकी चीजें भी जल्दी से मेज पर लगाओ।"

"बहुत अच्छा मेम साहब!"—कह बेयरा तेजीसे बाहर चला गया।

"आप भी तो नान वेजिटेरियन ही होंगे?'—पूछा मनोरमा ने।

क्षण भर के लिए मोहन चुप रहा। यूनीवर्सिटी में अमरेश के दबाव के कारण एक-दो बार उसने आमलेट और गोश्त वगैरह जरूर खाया था, पर उसके बाद से अब तक वह ठीक से भर पेट भोजन भी नहीं पा रहा है। गोश्त, आमलेट तो दूर की बात है।

और वह इस समय जिस सोसाइटी की लड़की के पास बैठा है, उससे यह कहना कि वह वेजिटेरियन है, कुछ अशोमन-सा लगेगा।

इसलिए बोला—"मैं किसी चीज से परहेज नहीं करता, पर आप यह सब तकलीफ व्यर्थ में उठा रही हैं। आजकल राशन का जमाना है। घर पर मेरा भोजन खराब हो जायेगा।"

मनोरमा ने हँसकर कहा—"उसके पैसे आप मुझसे ले लीजिएगा!"

हालाँ कि मनोरमा ने यग बात हँसी-हँसी में कही थी, पर उसे नहीं मालूम था कि उसकी हँसी उसके मेहमान का अपमान भी कर सकती है।

और जब उसने इस चीज को महसूस किया, तब उसने बड़ी ही नम्रता से उससे काफी माँग ली।

मोहन मुस्कुरा दिया।

कई क्षणों की खामोशी के बाद मनोरमा ने पूछा—"खाने से जब आपको एतराज नहीं है, तब तो पीने से भी नहीं होगा?"

"आपका ख्याल गलत है। मैं पीता नहीं। और अगर कुछ पीता भी हूँ तो वह सिगरेट।"—मोहन ने कहा।

"पता नहीं आप लोग बिना पिए कैसे रह सकते हैं!" मनोरमा ने कहा—"अगर मैं किसी दिन न पियूँ तो मेरी तबियत खराब हो जाय!"

"यह तो अपनी-अपनी आदत पर है। आप अगर न पीयें तब

आपकी तबियत खराब हो जाती है और अगर मैं पी लूँ तो मेरी तबियत खराब हो जाय ."—मोहन ने कहा—"चीज वही है, लेकिन आदत की वजह से दोनों पर उसका असर अलग-अलग है।"

"जो कुछ भी हो आपको भी आज मेरा साथ देना पड़ेगा। अकेले पीने में मजा नहीं आता . "—मनोरमा ने कहा।

देशी शराब की उस दूकान के पास जिस समय वह खड़ा था, यदि मनोरमा उस समय न भी कहती तो वह माँग कर पीता, पर इस समय उसके मस्तिष्क का संतुलन बिल्कुल ठीक था।

वह जानता था कि शराब ऐसी बुरी चीज है कि अगर एक बार भी होठों से लग गयी, तो फिर कभी भी पीछा नहीं छोड़ेगी और यह मनोरमा उसे जिन्दगी भर शराब नहीं पिलाती रहेगी। अभी पिलाकर वह उसे शराबी बना देना चाहती है और जिस दिन वह जान जायेगी कि उसके होठों को शराब से प्यार हो गया है और उस प्यार की भूख मिटाने के लिए उसकी जेब में पैसा नहीं है, तब वह उसे अपने पास भी न आने देगी और तब उसकी दशा आज से भी बुरी हो जायेगी।

बोला—"इसके लिए तो मैं आपसे माफी चाहूँगा ."

"और अगर मैं माफ न करू तो?"—मनोरमा ने कहा।

मोहन भी मुस्कुरा पड़ा।

बोला—"स्त्रियाँ अपना स्वाभाविक गुण छोड़ देंगी, ऐसा तो मैंने नहीं सुना था !"

मनोरमा मुस्कुरा पड़ी। बोली—"बड़े चालाक हैं आप, मान गई!"

मोहन कुछ बोला नहीं। मुस्कराकर रह गया।

बेयरा ने बाकी खाना लाकर मेज पर रख दिया।

"आइए !"—उठकर मनोरमा ने कहा।

क्षण भर के बाद उठकर मोहन ने कहा—"आपका कहना मान लेता हूँ, पर इतना कहूँगा भी कि यह आपकी ज्यादती है।"

"ज्यादती की नई परिभाषा बताने के लिए धन्यवाद !"—मुस्कुरा कर मनोरमा ने कहा।

मोहन निरुत्तर हो गया।

कुर्सी पर बैठ कर मनोरमा ने पूछा—"आप पीते तो नहीं, पर साथ बैठने में तो आपको एतराज़ नहीं है न ?.. "

"जी नहीं, बिल्कुल नहीं ! इतना ही नहीं मैं तो पानी से आपका साथ भी देने को सोच रहा था ! "—मोहन ने कहा।

मनोरमा हँस पड़ी और हँसते-हँसते बोली—"पानी से ही पेट भर लेने का इरादा है क्या ? "

"जी, नहीं तो ।"

कनखियों से मनोरमा उसके शर्माये चेहरे को देखकर मुस्कुरा पड़ी और जल्दी से दो पेग रम गले के नीचे उतार गयी।

मोहन इस आधुनिक नारी को अपलक देखता रहा, जो अपने घर में एक पराए पुरुष के आगे निसंकोच शराब पी रही थी।

पश्चिमी सभ्यता में रंगे बड़े घरानों के बारे में उसने बहुत कुछ सुन-पढ़ रक्खा, पर अभी तक स्वयं अनुभव नहीं किया था, क्योंकि वह इन लोगों की दुनिया से बहुत दूर था। पर आज वह अपनी आँखों से देख रहा है, स्वयं अनुभव कर रहा है।

अब तक उसने नारी का और ही रूप देखा था, पर यहाँ आकर उसने उसका और भी रूप देखा। ऐसा रूप जो भारतीय नहीं था, स्तुत्य नहीं था।

रम और सोडावाटर की बोतलें और पेग बेयरा उठा ले गया।

मनोरमा ने कहा—"अब शुरू कीजिए !"

मोहन ने चुपचाप छुरी, काँटा उठा लिया, थोड़ी देर तक छुरी काँटे और प्लेटोंकी खनखनाहट होती रही।

मनोरमा खाती जाती थी और मोहन की ओर देखती जाती थी।

जब मोहन खा चुका तो मनोरमा ने कहा—"आप तो तकल्लुफ कर रहे हैं। और लीजिए न ! . "—

"जितना आज मैं खा गया हूँ, उसका आधा ही मैं खाता हूँ....."
मोहन ने कहा।

"झूठ बोलना तो कोई आपसे सीखे..." मनोरमा ने शोखी से कहा।

मोहन ने मुस्करा कर कहा—"खाने के सम्बंध में झूठ बोलने की आवश्यकता मैं नहीं समझता, क्योंकि इससे खुद भूखा रह जाने का डर है!...."

मनोरमा ने हाथ धोकर बेयरा द्वारा दिए गए टावेल से हाथ पोंछ लिया और उठ खड़ी हुई।

बोली—"आइए, अब बैठकर रेडियो सुना जाय"

कुर्सी छोड़कर मोहन उठ खड़ा हुआ और सोफे में जाकर धँस गया।

"लीजिए सिगरेट पीजिए!"—'५५५' सिगरेट का डिब्बा उसकी ओर बढ़ाकर मनोरमा ने कहा।

मोहन ने एक सिगरेट निकाल लिया।

पहले उसकी और फिर अपनी सिगरेट जला कर वह मोहन की बगल में बैठ गई।

सिगरेट के धुएँ का छल्ला मोहन के मुँह पर फेंक कर मनोरमा ने पूछा—"आपकी 'हाबी' क्या है?"

"किताबें लिखना!"

"किताबें यानी टेक्स्टबुक्स?"

"जो नहीं। उपन्यास!"

"ओह, तो आप नावेलिस्ट हैं"—मनोरमा ने मोहन के बिल्कुल नज़दीक आकर कहा—"सुना था कि नोवेलिस्ट कुछ 'सिनिक' होते हैं। सो देख भी लिया!"

अपने कन्धे के सहारे टिकती हुई मनोरमा की ओर मोहन ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा।

"जिस रात हमारी ट्रेन उलटी थी, उस समय की बात मुझे इस समय भी याद है और हमेशा याद रहेगी ..."—मनोरमा ने कहा—"पहले

गोद में लेना और फिर बिल्कुल भूल जाना। 'सिनिको' का-सा ही तो वह व्यवहार था... "

मोहन को लगा कि उसने शराब न पीकर भी पी ली है। उसका विवेक उससे दूर भागा जा रहा है और उसका स्थान उसकी अतृप्त कामनाओं और लालसाओं ने उमड़कर ले लिया है, जो बिना पिए ही नशे में खोयी रहती हैं।

जिस चीज़ का उसे डर था वही सामने आ गया। वह जानता था कि इस मनोरमा में इतनी आकर्षण-शक्ति है कि पत्थर को भी खींच कर अपने सीने से लगने पर विवश कर देगी, फिर वह तो अतृप्ति की आग में जलता युवक है, जिसका तन और मन बुरी तरह भूखा है।

उसकी दशा उस समय उस भूखे भिखारी की तरह हो गई थी, जिसके सामने स्वादिष्ठ थाली परस कर रख दी गई हो और वह उसकी ओर तेजी से दौड़ा जा रहा हो।

वह जानता है कि बुरा है, फिर भी .वह अपने मन को नहीं रोक पा रहा था' चाहकर भी नहीं।

मनोरमा उसकी गोद में सिमटी आ रही थी।

उसकी अतृप्त कामनाएँ और लालसायें अपनी भूख मिटाने के लिए उस पर अपनी पूरी शक्ति से आक्रमण करने की तैयारी कर रहीं थीं।

आसमान की छाती पर छाए सन्नाटे' की तरह उस कमरे में भी सन्नाटा छा गया था।

कमरे में छा गए मादक सन्नाटे-को रेडियो पर बजनेवाले सितार ने और भी मादक बना दिया था।

वातावरण शराबी-सा लड़खड़ा रहा था।

दीवालें दो दिलों की धड़कनों के टक्कर को सुनकर अपने होश खोती जा रही थीं।

१३

तक़ादे वालों की निगाहों से बचता हुआ मोहन जब अपनी कोठरी में पहुँचा, उस समय दस से उपर हो रहा था।

उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके शरीर में अब इतनी भी ताकत नहीं रह गई है कि थोड़ी दूर भी वह पैदल चल सके।

लेकिन सर्दी से काँपता, कमजोरी से लड़खड़ाता किसी तरह अपनी कोठरी में जब पहुँचा, तो उसकी आँखें आश्चर्य से फैल गईं। पहले तो उसे लगा कि वह अपने नहीं किसी दूसरे की कोठरी में आ गया है। यह ख्याल आते ही वह चौंक उठा। पर दूसरे ही क्षण अपनी खाम-खयाली पर मुस्कुरा उठा।

वह अपनी ही कोठरी मे आया था। यह उसी की कोठरी थी, यद्यपि उसकी सूरत बदल गई थी। उसने सिर घुमाकर कोठरी का कोना-कोना देख लिया। उसे ऐसा लगा जैसे किसी ने जादू के जोर से उसकी कोठरो को सजा-संवार कर दुल्हन बना दिया है।

विस्मय के सागर में डूबता-उतराता वह जब अपनी चारपाई पर बैठा, तो चौंक कर उठ बैठा। सिर घुमाकर उसने देखा कि उसकी झूलेदार चारपाई भी आज बदल गई है। किसी ने घण्टों मिहनत कर उसकी चारपाई की शकल दे दी थी।

वह समझ नहीं पा रहा था कि आज आखिर किस दयावान ने उस पर इतनी दया कर दी है। जब वह कोठरी छोड़कर गया था, तो उसे महल्ले के दरिन्दे घेरे थे। वे निराश होकर चले तो गए ही होंगे लेकिन उन लोगों के जाने के बाद किसीने पस पर यह महती कृपा की है!

चारपाई पर लेटकर वह सोचता रहा ।

किसने किया है यह सब ? कौन कर सकता है ? किसे इतनी सहानुभूति है ?

क्षण भर के लिए शैल के नौकर की आकृति उसकी आँखों के सामने आयी, पर सिर को झटका देकर उसने उसे हटा दिया। लेकिन दो क्षण बाद फिर उसकी आकृति अनायास ही उसकी आँखों के सामने आ गयी ।

और तब उसे लगा कि अवश्य ही उसी ने सब कुछ किया है ।

सर्दी बढ़ती जा रही थी और उसी शरीर सर्दी के कारण ठिठुरा जा रहा था । उसने धीरे-धीरे अपने पैर सिकोड़ कर गठरी का रूप धारण कर लिया । पर सर्दी थी कि उसका पीछा ही नहीं छोड़ रही थी, उसकी रगों में समाती जा रही थी ।

उसके बदन के साथ-साथ उसकी रगें भी अकड़ी जा रही थीं। आँखें सर्दी के कारण जमी जा रही थीं । कस कर दाँत दबा लिया उसने, फिर भी वे कभी-कभी बज ही जाते थे ।

सर्दी से दुखती आँखों से उसने कोठरी में किसी ओढ़ने लायक चीज को देखा । उसकी आँखें खद्दर के कपड़े के बन्डल पर पड़ीं ।

उसकी आँखें चमक उठीं । तेजी से वह उठा और बन्डल खोल-कर उसने धोती और कपड़ा निकाल कर, कपड़े को दुहरा कर धोती के बराबर कर साट लिया और चारपाई पर आकर उसे ओढ़कर लेट गया ।

अब उसे थोड़ा-सा आराम मिला ।

आँखें बन्द कर वह सोने का प्रयत्न करने लगा ।

सर्दी पर जवानी आ रही थी ।

मनोरमा के गदराए यवनौ की याद लिए वह सो गया ।

और जब सुबह उसकी नींद खुली, तो उसने देखा कि वह कपड़ा, जिसे ओढ़कर वह सोया था, चारपाई के नीचे गिरा पड़ा है। उसने उठने

की कोशिश की, पर उठ नहीं सका। उसे लगा कि उसकी रगों का खून जम गया है, और शायद इसलिए उसके सीने पर मनों बोझ रक्खा हुआ है और उसमें दर्द हो रहा है।

अपना सीना सहलाने के लिए जब उसने अपना हाथ सीने पर रक्खा तो चौंककर उसे हटा लिया। सीना तपे हुए तवे की तरह गर्म था और साँस जोरों से चल रही थी। वह घबड़ा गया कि आखिर इतनी गर्मी उसके सीने में कहाँ से आ गई? कल रात जब वह मनोरमा के पास था तो उसका सीना आवश्यकता से बहुत अधिक अवश्य गर्म था, पर इतना नहीं जितना इस समय है।

सहसा उसे ख्याल आया कि उसे बुखार हो आया है। अपनी आशंका मिटाने के लिए उसने अपनी नाड़ी देखी। उसकी गति भी बहुत तेज थी। नाक के पास उँगली रखकर जोर से उसने साँस छोड़ी। उसने डर कर उँगली हटा ली, जैसे किसी गर्म भाप में उसकी उँगली पड़ गई हो।

उसे निश्चय हो गया कि उसे बुखार हो आया है और वह भी जोरों का।

वह काँप उठा। अब क्या होगा? उसके पास पैसा तो है नहीं वह दवा कहाँ से करेगा? बिना पैसे के उसे कौन दवा देगा?

तभी उसकी आँखों में ग्लोरियाकी आकृति कौंध गई। उसके सफेद हो रहे होंठ जरा-से मुस्कुराए। वहाँ उसे दवा मुफ्त मिल सकेगी और ग्लोरिया की देख-रेख में वह शीघ्र ही स्वस्थ भी हो सकेगा।

लेकिन वहाँ तक पहुँचे कैसे? अकेले जाने की क्षमता उसमें रह नहीं गई है। फिर? और उसे तकादेवालों के आने के पहले ही यहाँ से निकल जाना चाहिए, नहीं तो आज उसकी मौत निश्चित है।

सड़क पर से गुजरते किसी रिक्शे को रोकने के लिए वह खिड़की खोलने ही वाला था कि शैल का नौकर अन्दर आया।

अन्दर आते ही उसने पूछा—"कहिए मोहन बाबू, कब आये रात को आप....?"

खिड़की के पास से हाथ हटा कर मोहन ने उसकी ओर देखा।

मोहन का चेहरा देखते ही वह चौंक पड़ा। झपट कर वह मोहन के पास आया और उसका बदन छूते ही वह चौंक पड़ा। बोला—"अरे, मोहन बाबू! आपको तो जोरों का बुखार है और आप नंगे पड़े हैं!"

कहते-कहते उसने खद्दर की सटी धोती और कपड़े से उसे उढ़ा दिया।

"मामूली-सा बुखार है। अभी चाय पीने से ठीक हो जाऊँगा!" मोहन ने कहा।

"आप इसे मामूली-सी बुखार कहते हैं? आग की तरह आपका बदन जल रहा है!"

उसने कहा—'आप लेटे रहिए, अभी मैं शैल बीबी से कह कर डाक्टर बुलवाता हूँ!"

कह कर वह क्षण भर के लिए भी नहीं रुका। मोहन कुछ कहे-कहे कि वह तेजी से बाहर निकल गया।

और मोहन सोचता रह गया। तो यह सब शैल की मिहरबानी है! उसे मेरी दशा पर तरस आ गया, तभी उसने नौकर से कहकर मेरी कोठरी साफ करा दी है, मेरी चारपाई ठीक करा दी है और शायद उसी के कहने से तकादे दार चले गए हैं और इस समय नहीं आए हैं।

लेकिन वह होती कौन है मेरे मामलों में दखल देने वाली, मुझ पर तरस खाने वाली, मेरे लिए डाक्टर बुलवाने वाली? मेरी सूरत से तो उसे नफरत है। मुझे देखकर खिड़की बन्द कर लेती है, खिड़की कीओट में हो जाती है। फिर मेरा ख्याल रखने का ढोंग क्यों वह रचती है?

और उसे इसका हक भी क्या है? न मैं उसे जानता हूँ और न वह मुझे। मैं तो इतना ही जानता हूँ कि वह गंजा रामनाथ इसे अपना

मन बहलाने के लिए ले आया है और उसका मन बहला कर वह यहाँ से चली जायेगी।

अपने नौकर से शायद उसने मेरा नाम जान लिया हो और कल शाम को तकादे दार की वजह से मेरी आर्थिक दशा का भी उसे पता चल गया हो। बस, इससे अधिक कुछ नहीं।

यह ठीक है कि उस दिन मैंने लुटेरों से उसकी रक्षा की थी, पर शैल जैसी युवतियाँ किसी का आभार नहीं मानती। वह जो इतनी दया मुझ पर दिखा रही है, वह उस दिन के एहसानों के बदले में नहीं, किसी दूसरे रूप में, किसी दूसरे मतलब से।

शायद रामनाथ से उसको सन्तोष नहीं हो पाता और रामनाथ जैसा पिलपिला आदमी शैल जैसी युवती की उबलती जवानी को क्या संतोष दे पायेगा? और शायद इसलिए मुझपर दया की वर्षा की जा रही है!

लेकिन मुझे किसी की दया नहीं चाहिये, न मनोरमा की, न शैल की न ग्लोरिया की। मनोरमा, ग्लोरिया और शैल सब मुझे लूटना चाहती हैं। मनोरमा ने तो कल लूट भी लिया। पर अब वह किसी को नहीं लूटने देगा, किसी को भी नहीं।

किसी की दया नहीं चाहिए मुझे। मैं ऐसे ठीक हूँ। मैं खुद किसी अस्पताल चला जाऊँगा, पर शैल या शैल के डाक्टर की मुझे कोई आवश्यकता नहीं अगर वह या उसका नौकर किसी डाक्टर को लिवा कर आयेगा तो मैं उसे अपनी कोठरी से निकाल दूँगा

और उसने सचमुच डाक्टर और शैल के नौकर को अपनी कोठरी से निकाल दिया, जब वे अन्दर आए।

उन्हें निकाल कर वह चारपाई पर लेट कर जोरों से हाँफने लगा।

शैल के नौकर की समझ में ही नहीं आया कि इतनी ही देर में मोहन में इतना परिवर्तन कैसे हो गया।

डाक्टर के साथ भीगी आँखें लेकर वह शैल के पास पहुँचा।

शैल उसे देखकर घबड़ा गई। आशंकित स्वर में पूछ बैठी—"क्या हुआ? तुम चले क्यों आए?"—

"मोहन बाबू ने मुझे भी और डाक्टर को भी निकाल दिया..." उसने कहा।

"क्यों?"—चस्मित स्वर में बोल उठी वह।

"यह तो मैं नहीं जानता, पर इस समय वे बहुत क्रोध में हैं." उसने कहा।

शैल नहीं जानती थी कि पुरुष का दर्प ही उसकी कमजोरी होता है। और यह दर्प ऊपर से देखने में जितना कठोर और मजबूत होता है, अन्दर से उतना ही पोला और कमजोर होता है, एक ही ठोकर में अपना अस्तित्व खो देता है।

शैल कई क्षणों तक सोचती खड़ी रही, फिर डाक्टर से उसने पूछा-"आपका क्या ख्याल है डाक्टर?"

"उन्हें बहुत तेज बुखार है, और मेरा ख्याल है कि उन्हें निमोनिया हो गया है.."—डाक्टर ने कहा—'और अगर सावधानी से उनकी देख-भाल न की गई तो हालत नाजुक हो जाने की आशंका है!"

शैल ने तुरन्त कहा—"तो चलिए डाक्टर। मैं भी आपके साथ चलती हूँ.."

डाक्टर ने कहा—'लेकिन"

"मैं जानती हूँ कि आपका अपमान हुआ है, उसके लिए मैं आपसे माफी माँगती हूँ। आइए, चलिए!"

अब डाक्टर कुछ नहीं कह सका। शैल के साथ उसे चलना ही पड़ा

जैसे ही शैल, डाक्टर और अपने नौकर के साथ मोहन की कोठरी के दरवाजे पर पहुँची, मोहन चारपाई पर बैठ कर चिल्ला उठा—"तुम लोग यहाँ से चले जाओ। मुझे किसी की दया नहीं चाहिए, किसी की सहायता नहीं.."

तव तक शैल अन्दर आ गई थी। शैल को देखते ही मोहन की आवाज अपने आप रुक गई। अपनी बात भी वह पूरी नहीं कर सकता

अपनी फटी-फटी आँखों से वह शैल और शैल के पीछे खड़े डाक्टर और उसके पीछे खड़े नौकर को देखता रहा।

"आप इन्हें देखिए, डाक्टर.. !" शैल ने कहा।

डाक्टर स्टेथिसकोप लेकर आगे बढ़ा, पर मोहन की आँखें देखकर सहम गया और एक पग भी आगे नहीं बढ़ सका।

लेकिन जब मोहन की दृष्टि डाक्टर पर से हटकर शैल पर पड़ी तो वह चुपचाप भीगी बिल्ली की तरह लेट गया। उसकी ओर देखने की भी उसकी हिम्मत नहीं पड़ी।

उसकी परीक्षा कर डाक्टर ने कहा—"चिन्ता की कोई बात नहीं है रोग अभी शैशवावस्था में ही है। हाँ, अगर ठीक से इलाज और देख-भाल न हुआ तो भयंकर रूप धारण कर सकता है!"

शैल ने सिर हिलाया, जैसे वह यह सब समझती है।

डाक्टर ने फिर कहा—'ये अपने बिस्तर से हिलने न पावें और न इन्हें सर्दी लगने पावे, इसका ध्यान रखियेगा "

शैल ने सिर हिलाकर बहुत अच्छा कहा।

"मैं अभी इन्हें एक इन्जेक्शन लगाए देता हूँ। उससे इनका बुखार भी उतर जावेगा और नींद भी आ जायेगी "—डाक्टर ने कहा—और दवाखाने से मैं खाने और इनके सीने पर मालिश करने की दवा भेज दूँगा। एक-एक घन्टे पर दवा खिलाइए और मालिश कीजिए!"

डाक्टर ने बैग से स्प्रिट लैम्प निकाल कर थोड़ा सा पानी गरम किया और उसमें सुई डाल दी। गरम पानी से सिरिंज को साफ कर उसने सुई लगा ली और दवा की शीशी का मुँह ब्लेड से काटकर सिरिंज में भर लिया।

जैसे ही डाक्टर मोहन की बाँह पर स्पिरिट लगाने के लिए झुका,

वह फिर चीख उठा—"मुझे आपके दवा की जरूरत नहीं है। आप फौरन अभी चले जाइए यहाँ से, अभी. ."

डाक्टर ने शैल की ओर देखा।

शैल आगे बढ़ आयी और अधिकार भरे स्वर में बोली—"आप इन्जेक्शन लगाइए, डाक्टर!"

मोहन का सिर विरोध करने के लिए उठा, पर शैल की आँखों से आँखें मिलते ही फिर झुक गया।

डाक्टर मन ही मन मुस्कुराया और स्प्रिट मलकर उसने इन्जेक्शन लगा दिया।

मोहन चुपचाप लेटा रहा, जैसे उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। शैल जो चाहेगी, वही वह करेगा, वह जो कहेगी, वही वह मानेगा।

सिरिंज, स्प्रिट लैम्प वगैरह अपने बक्स में रखकर डाक्टर ने कहा—"आप अपने नौकर को मेरे साथ भेज दीजिए। मैं दवा दे दूँगा। पर जैसा मैंने कहा है, इन सब का ख्याल रखना बहुत जरूरी है और अगर आपसे न हो सके तो मैं जेनरल हास्पिटल से किसी नर्स का प्रबन्ध कर दूँ ..."

"जी नहीं, मैं खबर कर लूँगी। आप निश्चिन्त रहिए!—शैल ने कहा

"अच्छी बात है! . "—कह, डाक्टर चलने को हुआ।

"आपकी फीस यह दे देगा "—अपने नौकर की ओर इशारा करके शैल ने कहा।

'कोई बात नहीं "—डाक्टर ने कहा—"अगर किसी समय मेरी जरूरत महसूस हो, तो मुझे फोन कर दीजिएगा।"

"बहुत अच्छा! . "

"नमस्ते!"

"नमस्ते!"

और डाक्टर नौकर के साथ चला गया।

शैल ने मोहन की ओर देखा, जिसकी पलकें झँप रही थीं।

अपनी झँपती पलकों में से मोहन ने भी उसे देखा और लगा कि यह शैल तो और ही शैल है, वह शैल नहीं जिसकी कल्पना उसने की थी। वह शैल तो कामुकी थी, पैसों पर अपना रूप और यौवन बेचने वाली थी, पर यह तो दूसरी शैल है, पुराणों की कहानियों के नायक शङ्कर की पत्नी गिरिजा की तरह पवित्र, स्निग्ध, कोमल और दयावती।

लेकिन रामनाथ जैसे पाजी और पापी के पास वह कैसे आ गई ? यह तो अब निश्चित सा होता जा रहा है कि हर महीने की पहिली तारीख को आने वाली लड़कियों में वह नहीं है, क्योंकि यदि वह भी उन्हीं की श्रेणी में होती, तो रामनाथ का नौकर उसकी इतनी इज्जत न करता और न उसकी किसी आज्ञा का पालन करता !

फिर यह कौन है ? रामनाथ की कोई रिश्तेदार ? बहन भाञ्जी या और कोई ?

अपनी क़रीब-क़रीब बन्द हो चली पलकों में से झाँक कर उसने आखिरी बार अपनी ही ओर देखती शैल को देखा और फिर उसकी पलकें बिल्कुल मुँद गईं। दवा ने काम करना शुरू कर दिया था।

शैलने जब देखा कि उसे नींद आ गई है; तब वह अपनी जगहसे हिली। कमरे को देखा और उस कमरे के सूनेपन को मिटाने के लिए व मोहन की ज़रूरत की चीज़ों की फहरिश्त बन ने के लिए उसने कागज की तलाश में इधर उधर निगाह दौड़ाई।

दरवाजे के सामने के ताखे पर कलम और दावात रक्खी थी, पर वहाँ कागज नहीं था। इधर-उधर घूमते हुए सहसा उसकी दृष्टि मोहन की चारपाई के नीचे पड़ी ट्रन्क पर पड़ी, जिसमे से कागज का एक टुकड़ा चोरी-चोरी बाहर झाँक रहा था।

झुक कर उसने ट्रक बाहर खींचकर कागज निकालने के लिए खोला। ट्रङ्क क्या था, भानुमती का पिटारा था। हिन्दी और अँग्रेजी की पत्रिकाएँ, व उपन्यासों का अम्बार उसमें जमा था।

उसने एक बार मोहन को देखा और फिर ट्रङ्क की उन पत्रिकाओं और उपन्यासों पर, और विस्मयावस्था में उन सबको बाहर निकाल लिया।

जिस उपन्यास में पड़ा हुआ कागज ट्रङ्क के बाहर निकला हुआ था, उसे उसने उठा कर देखा। मोहन के लिखे हुए उपन्यास 'रोटी' का वह सातवाँ संस्करण था। शैल की आँखें अविश्वास और आश्चर्य से फैलती जा रही थीं।

और जब उसने 'रोटी' के अन्दर छपे हुए मोहन के चित्र और उसके ऊपर के समर्पण—'उन्हें, जिनकी वजह से हमें रोटी नहीं मिल रही है'—तो उसकी आँखों में से अविश्वास की छाया तो हट गई, पर आश्चर्य पूर्ववत् ही रहा।

उसने सारा ट्रङ्क पलट दिया। उसके लगभग पन्द्रह उपन्यास थे और उनमें से पाँच अन्य प्रान्तीय भाषाओं में अनुवाद होकर कई संस्करणों में चले गये थे। पत्रिकाओं में भी मोहन की कहानियाँ और उसके उपन्यासों पर प्रशंसात्मक आलोचनाएँ थीं।

शैल की आँखें भर आयीं।

अपने आँचल से उसने सारी किताबें और पत्रिकायें पोंछकर अपने यहाँ ले जाने के लिए ठीक से रख दीं, और कागज निकाल कर सारी चीजों की जल्दी से फिहरिश्त बना डाली।

फिहरिश्त पर समीक्षात्मक दृष्टि डाल कर उसने उसे मोड़कर अपने ब्लाउज में खोंस लिया और मोहन के सिरहाने आकर बैठ गई।

थोड़ी देर तक वह उसे अपलक नयनों से देखती रही, फिर उसके हाथ अनायास ही मोहन के सिर पर जा पहुँचे और वह अपने मन के सारे उत्फुल्ल प्यार से उसके सिर को सहलाने लगी।

दवा के प्रभाव के कारण मोहन सोता रहा।

और शैल प्यार से उसके सिर को सहलाती रही।

—०००—

१४

मोहन को सहारा देकर शैल ने तकिए के सहारे बैठा दिया, और हारलिक्स से भरा गिलास उसकी ओर बढ़ा दिया।

गिलास लेकर मोहन ने कहा—"अब तो मैं पूर्ण स्वस्थ हो गया हूँ, इन चीजों की जरूरत तो नहीं रह गई है।"

मोहन सचमुच स्वस्थ हो रहा था। शैल ने रात-दिन एक करके उसकी सेवा की थी। उसी सेवा का परिणाम था कि एक ही सप्ताह के अन्दर मोहन निरोग ही नहीं, पूर्ण स्वस्थ भी हो चला था।

शैल ने उसे मधुर झिड़की दी—"तुम्हें किस चीज की आवश्यकता है, यह मैं तुमसे अधिक जानती हूँ। तुम बहस मत किया करो, जो मैं कहती हूँ, उसे चुपचाप मान लिया करो "चलो, पी लो हारलिक्स "

और तब मोहन कुछ भी नहीं बोल सका। चुपचाप एक ही घूँट में पूरा गिलास पी गया। गिलास लेकर शैल ने रुमाल से उसका मुँह पोंछ दिया।

गिलास को पास ही की छोटी-सी मेज पर रख कर शैल ने पूछा—"लेटोगे या, बैठे रहोगे ?"

"लेटे-लेटे तो कमर दुखने लग गई है। अभी जरा बैठना चाहता हूँ!"—मोहन ने कहा।

"तो लाओ मैं तकिए को दीवाल के सहारे लगा दूँ, ताकि आराम से बैठ सको! "—शैल ने कहा।

मोहन ने कहना चाहा कि व्यर्थ में कष्ट क्यों करती हो, मैं ऐसे ही ठीक हूँ, लेकिन शैल के मुँह की ओर देख कर चुप हो गया। कहने

की हिम्मत ही नहीं पड़ी। वह जानता है कि शैल ऐसी बातें पसन्द नहीं करती। ऐसी बातों से उसका कहना है—आदमी के मन में बेगानापन समाने लगता है, जो वह नहीं चाहती, वह नहीं चाहता।

शैल ने तकिया दीवाल के सहारे खड़ी कर दी। मोहन उसके सहारा देने पहले ही तकिए से लग कर बैठ गया।

शैल मुस्कुरा कर बैठ गई।

कई क्षणों की खामोशी के बाद मोहन ने कहा—"यदि तुम अन्यथा न समझो तो एक बात कहूँ।"

शैल ने कनखियों से मोहन की ओर देखा, जैसे जानना चाहती हो कि वह क्या कहना चाहता है, जो कहने के पहले उसकी इजाजत चाहता है।

बोली—"कोई खतरनाक बात कहने जा रहे हो क्या ?. " कह, क्षण भर के लिए रुकी, रचिक मुस्कुराई और फिर बोली—"अगर ऐसी बात हो, तो बता दो ताकि सोच समझ कर 'हाँ' या 'ना' कर सकूँ! "

"न, ऐसी बात तो नहीं है !"–हँस कर मोहन ने कहा।

"तो फिर मेरी इजाजत लेने की क्या जरूरत है ? कहो न, जो कहना चाहते हो ! . "—शैल ने कहा।

अब मोहन कैसे बताए कि उससे मुहब्बत करने के साथ-साथ वह डरने भी लगा है ? शर्म न लगती उसे ?

धीरे से बोला—"मैं अपने अब तक के व्यवहारों के लिए क्षमा चाहता हूँ। उस दिन-रात को और उस दिन जब तुम डाक्टर के साथ आई थीं, मैंने तुम्हारा अनायास ही अपमान कर ..."

कहते-कहते मोहन शैल की आँखों का भाव देखकर सहसा ही रुक गया।

विमूढ़-सा वह शैल की अब और तब में बरसने वाली आँखों को देखने लगा। वह समझ नहीं पाया कि अभी-अभी मुस्कुराती आँखों में

बरसना शुरू करके फिर कभी बन्द न होने-वाले ये घन कहाँ से, किधर से घिर आए!

वह कुछ समझे-समझे कि घन बरस पड़े।

कई क्षणों तक वह विमूढ़-सा बरसते हुए उन नैनों को देखता रहा। सोच ही नहीं सका, समझ ही नहीं सका कि क्या करे!

लेकिन शीघ्र ही उसने अपने को सँभाल लिया और शैल के आँचल से ही उसके आँसुओं को पोंछते हुए उसने कहा—"यह तुम्हें क्या हो गया, शैल?. ."

शैल कुछ बोली नहीं।

घन बरसते ही रहे।

"बोलो न क्या बात हो गई? क्या हो गया तुम्हें? .."

सुबकते हुए शैल ने कहा—"तुम से मतलब? मैं तुमसे नहीं बोलती! ."

सुनकर मोहन सन्नाटे में आ गया। उसने कोई ऐसी-वैसी बात तो नहीं कही, जो शैल को रुला दे। लेकिन यह निश्चित है कि उसी ने कोई ऐसी बात कह दी है, जिसने शैल जैसी पढ़ी-लिखी युवती को भी आँसू बहाने पर विवश कर दिया।

उसने प्रयत्न किया कि अपनी गलती जान ले, पर असफल रहा।

उसके शैल की ठोढ़ी पकड़कर अपनी ओर घुमा लिया और भरे गले से बोला—"तुम्हें मेरी सौगन्ध, शैल! बोलो न, क्या हो गया तुम्हें? क्या कह दिया मैंने?"

आँसुओं के कारण लाल हो आयीं आँखों से शैल ने मोहन की ओर देखा। देखा और देखकर चुप रह गई। कुछ बोली नहीं।

"इतनी कठोर मत बनो शैल, नहीं तो मर जा "

बिजली की सी तेजी से शैल ने अपनी हथेली उसके होठों पर रख दी जिसकी वजह से उसके मुँह की बात मुँह में ही रह गई।

"ऐसी कठोर बातें मुँह से निकाल-निकाल कर आखिर तुम चाहते क्या हो ?...."—शैल बोली।

मोहन कुछ बोल नहीं सका। उसने सुना था, पढ़ा था, लिखा था कि नारी पहेली होती है, सो आज वह देख भी रहा है। धीर से धीर, गंभीर से गंभीर नारी भी जरा-सी बात में सौ-सौ आँसू रो देती है। जैसे आँसू इनकी आँखों में से बाहर आने के लिए हर समय तैयार रहते हैं कि जहाँ जरा-सा धचका लगा, छलक पड़े।

मोहन को चुप देखकर शैल भी चुप हो गई।

हाँ, घन बरस कर जा चुके थे।

कई क्षणों के बाद मोहन ने सँभल-सँभल कर कहा—"बोलो शैल, मैंने ऐसी क्या बात कह दी थी कि तुम रो पड़ीं....!'

"तुम तो इस समय उस कातिल की तरह बोल रहे हो, जो कत्ल करने के बाद पूछता है कि क्या हुआ ?"—शैल ते वातावरण पर छा गए अवसाद के बादलों को परिहास से हटाने की कोशिश की। मारना भी, जिलाना भी। नारी के इन्हीं गुणों को अपने में समेट कर शायद दुर्गा ने जन्म लिया था।

"बात को उड़ाने की कोशिश मत करो, शैल। सच-सच कहो, क्या बात थी ?"—गंभीर स्वर में मोहन ने कहा।

"मैं बात उड़ाने की कोशिश तो नहीं कर रही हूँ। सच बात ही कह रही थी ?"

मोहन ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा, जैसे उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

शैल उस बात को अब अपने मुँह से नहीं कहना चाहती थी, पर उसे लगा कि मोहन उससे कहलवा कर रहेगा। बोली—"अपनी सेवा से मैंने समझा था कि तुम्हें मैंने अपना बना लिया है, पर अभी-अभी मुझे ऐसा लगा, जैसे वह मेरा भ्रम था। मैं...."

मोहन बीच में बोल उठा—"मेरे प्राणों पर आ बनी है शैल। सच-सच कहो, क्या बात है? जीवन में अब तक मैंने दुःख ही दुःख उठाया है। तुम्हारी वजह से जो थोड़ा-सा सुख नसीब हुआ है, वह भी अगर तुम छीन लेना चाहती हो, तो शौक से छीन सकती हो, क्योंकि वह तुम्हारी वस्तु है और उस पर मुझसे अधिक तुम्हारा अधिकार है ·"

"मोहन !"

"मुझे धोखे में मत रक्खो शैल। जो कहना है साफ-साफ कह दो। बिना किसी हिचक के। मैं सब सुनूँगा, सब सहूँगा ·"—

शैल को लगा कि बात ही बिल्कुल पलट गई है। घायल करने वाला खुद घायल हो गया है।

धीरे-से उसने कहा—"मोहन, अपने अपनों से किसी भी बात के लिए माफी नहीं माँगते और अभी-अभी जब तुमने अपने पिछले व्यवहारों के लिए मुझसे माफी माँगी, तब मुझे लगा कि मैंने तुम्हें पाकर भी खो दिया है, क्योंकि यदि तुम मेरे हो जाते तो पिछली गलतियों को कभी भी न याद करते, उसके लिए कभी भी माफी न माँगते। यह ख्याल आते ही मेरा मन भर आया और मैं अपने आँसुओं को बरसने से रोक नहीं सकी ।"—क्षण भर की चुप्पी के बाद और मोहन के कुछ बोलने के पहले वह फिर बोल उठी—"पर तुम पुरुष हो, इसलिए कठोर हो। तुम क्या जानो हमारे दर्द को। जो मुँह में आया कह दिया। कहने के समय यह नहीं सोचते कि ये तीर हैं, किसी के हृदय को चाक-चाक कर देंगे।"

मोहन को लगा कि सचमुच उसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए थी। गलती तो उससे हो गई और वह भी एक ही नहीं, कई।

अपना हाथ बढ़ाकर उसने शैल के बाँये हाथ की हथेली अपने हाथों में ले ली, और बोलने ही जा रहा था कि शैल ने मना किया—"अब मैं तुमसे कभी नहीं बोलूँगी, कभी भी नहीं, चाहे बोलने के लिए तरस-

तरस कर, तड़प-तड़प कर रह जाना पड़े . "—कह, उसने अपना हाथ खींचने की कोशिश की।

मोहन ने हाथ को और जोरों से दबा लिया और पश्चात्ताप भरे स्वर में बोला—"अब तो गलती हो ही गई है। दुबारा गलती न हो जाय, इसलिए माफ़ी नहीं माँग रहा हूँ। हाँ, यह चाहता हूँ कि तुम मुझे कोई सजा दो और वह भी ऐसी सजा कि भविष्य में भूल कर भी ऐसी गलती न करूँ !"

शैल ने कनखियों से मोहन की ओर देखा। उसके कहने के ढङ्ग और चेहरे की भावभगी देखकर उसे जोरों की हँसी आ रही थी, पर दाँतों को दबा कर वह अपनी हँसी रोक रही थी।

और जब हँसी रुक गई तब उसने कहा—"पहली सजा तो यह है कि तुम मेरा हाथ छोड़ दो !"

मोहन ने शैल की ओर देखा। उसके चेहरे को देखकर उसका साहस वापस लौट आया। धीरे से बोला—"हाथ मैं नहीं छोड़ूगा। यह सजा मैं नहीं मानता !"

शैल मुस्करा पड़ी। बोली—"फिर मेरे सजा देने और तुम्हारे सजा पाने का मुल्य ही क्या है ? साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि तुम मुफ्त में ही छूट जाना चाहते हो !"

"यह मैं क्यों कहूँ ? पर सजा तो अपराध को दृष्टि में रखकर देनी चाहिए न ?"—मोहन ने कहा।

"यह खूब रही। खूनी को अगर फाँसी का दण्ड मिले, तो वह न्यायाधीश से से कहे कि उसे जो दण्ड दिया गया है वह उसके अपराध से गुरुतर है, तो बस फिर हो चुका न्याय" "—शैल ने कहा—"अपराधी को अगर उसके मन-माफिक ही दण्ड दिया जाय तो फिर न्यायालयों और न्यायधीशों की क्या आवश्यकता है ?"

"आज के से न्यायालयों और उसमें बैठ कर न्याय के नाम पर

अन्याय करने वाले न्यायाधीशों की वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं है। तुम प्रैक्टिस करने जा रही हो, इस चीज को शीघ्र ही महसूस करोगी कि मैं गलत नहीं कह रहा था ''—मोहन ने कहा—"लेकिन अब तुम्हारे न्याय के विरुद्ध कुछ भी नहीं कहूँगा। जो भी सजा चाहो, दो!"

"यदि बीच में न बोलने का वादा करो तो?"—शैल ने कहा।

"वादा!"

"तो फिर पहले हाथ छोड़ दो. "—शैल ने मुस्कुरा कर कहा।

"लेकिन इसके लिए तो · "

शैल बीच ही में बोल उठी—"भूलो मत, वादा कर चुके हो !"

मोहन ने सोचा कि बुरा फँस गया वादा करके। पर अब तो वादा कर ही लिया था। उसे निभाना ही पड़ेगा।

उसने धीरे से हाथ छोड़ दिया। इतने धीरे से मानों उसे छोड़ने से कष्ट हो रहा हो।

शैल की मुस्कान बढ़ती जा रही थी।

आगे की सजा सुनने के लिए मोहन ने अपनी आँखें शैल की ओर उठायीं।

"भविष्य में कोई ऐसा बात नहीं कहोगे—परिहास में भी—जिससे बेगानापन झलके "

"मंजूर!"—मोहन ने कहा—"बस, कि और कुछ?"

"अभी ही बस? अरे अभी तो "

शैल की बात पूरी होने के पहले ही मोहन बोल उठा—"अभी तो इब्तदाए इश्क है, रोता है क्या; आगे-आगे देखिए होता है क्या?"—वह मुस्कुरा पड़ा।

शैल भी अपनी मुस्कान न रोक सकी।

मुस्कराते हुए बोली—"पुरुष अपने ऊपर आयी बात को मुस्कान की छाया में उड़ा देना खूब जानता है "

"मैं नहीं डरा रहा हूँ"—मोहन ने मुस्कुरा कर कहा—"और जो सजा देनी हो, जल्दी से दे डालो।"

"तुम्हें तो हर चीज में जल्दी रहती है.."—शैल ने कहा—"दे रही हूँ, इतने घबड़ाए क्यों जा रहे हो।"

मोहन मुस्कुरा उठा। बोला—"मैं कहाँ घबड़ा रहा हूँ"—और मन में कहा, घबड़ा तो तुम रही हो!

"हाँ तीसरी सजा यह है कि तुम बिना मेरी मर्जी के या बिना मुझसे पूछे कोई काम मत किया करो"—शैल ने कहा—"मंजूर. ?"

"हाँ, मंजूर।"

शैल मुस्कुरा कर कुछ कहने ही जा रही थी कि दरवाजे पर डाक्टर की छाया दीख पड़ी, जिसे देखकर वह बोल उठी—"कौन, डाक्टर साहब? आइए, आइए।"

डाक्टर मुस्कुराता हुआ अन्दर आया।

"नमस्ते डाक्टर साहब!"

"नमस्ते मोहन बाबू"—डाक्टर ने पास आकर कहा—"कहिए अब कैसी तबियत है?"

"अब तो आप आ ही गए हैं, स्वयं देख लीजिए"—मुस्कुरा कर मोहन ने कहा।

"अच्छा, अच्छा!"—कह डाक्टर ने मोहन की सावधानी से परीक्षा की और शैल की ओर घूमकर बोले—"अब ये पूर्ण निरोग हो गए हैं। कमजोरी भी जाती रही है। फिर भी एक इञ्जेक्शन मैं और दिए देता हूँ। इसके बाद मेरी कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी।"

शैल ने मोहन की ओर देखा और मोहन ने शैल की ओर देखा और दोनों आँखों ही आँखों में मुस्कुरा पड़े।

इञ्जेक्शन लगाकर डाक्टर अपने बाक्स में सामान रख ही रहे थे कि मोहन पूछ बैठा—"आपने मुझे पूर्ण निरोग बना तो दिया डाक्टर, पर

इस चारपाई और इस जौ तथा गेहूं के आटेके शर्बतसे कब छुटकारा मिलेगा ..!"

डाक्टरने मुस्कुरा कर कहा—"अब आप सुवह-शाम टहलना शुरू कर दीजिये, इससे आपके बदनमें फुर्ती तो आएगी ही, ताजी और शुद्ध हवा मिलनेसे आपके रक्त में भी वृद्धि होगी, जिससे आप देखते-देखते बीमार पड़ने के पहले की तरह हो जायगे ! "

"इस चारपाई की मुहब्बत से निजात दिलाने के लिए आपको शुक्रिया, डाक्टर साहब "—कनखियोंसे शैल की ओर देखकर मोहन ने मुस्कुरा कर कहा।

शैल उसका परिहास समझ कर मन ही मन मुस्कुरा कर रह गई।

वोली—"सुवह-शाम घूमने से क्या इन्हें फिर सर्दी लग जाने की आशंका नहीं है ? "

"तो क्या मैं इनको इस हालत में घूमने की सलाह दे रहा हूँ? " डाक्टर ने कहा—"उस समय तो इन्हें अपना वदन ठीक से ढंके रखना पड़ेगा, विशेष कर कान और सीना !"

कह, डाक्टर ने अपना बेग उठाया और चलने के लिए आज्ञा मागी।

"अच्छी वात है डाक्टर साहब। पर देखिए, अपना बिल जल्दी से भेज दीजिएगा "—शैल ने कहा।

डाक्टर ने कुछ कहा नहीं, मुस्कुरा कर केवल नमस्ते किया और चले गए।

डाक्टर के चले जाने के बाद शैल ने आँखों में शोखी भर कर कहा—"चारपाई की इस बेचैन मुहब्बत से तुम्हें कल तक छुटकारा नहीं मिलेगा। समझे !"

"पर मेरी तो तबियत ऊब गई है। मैं ."

शैल बीच में ही बोल उठी—"चारपाई बिचारी तो तुम्हारे नीचे चुपचाप पड़ी रहती है कुछ वोलती भी नहीं, और मैं .."

पर बात पूरी करने के पहले ही शैल को याद आ गया कि वह कड़ी बात कह गई है, जो उसे नहीं कहना चाहिए था और यह ख्याल आते ही वह शर्मा उठी। गाल शर्म से लाल हो उठे। पलकें अपने आप झुक गईं और मुँह की बात मुँह में ही रह गई।

शैल की बात बीच ही में रुकते सुनकर मोहन को झटका-सा लगा और जब अपनी आँखें घुमाकर शर्म से अपने ही में सिकुड़ी शैल को देखा, तो शरारत से उसकी आँखें मुस्कुरा उठीं। बोला—"हाँ तो चारपाई मेरे नीचे .."

"धत्. !" कह, शैल ने जल्दी से आँचल का एक छोर अपने दांतों के नीचे दबा लिया।

"इसमें भला धत्त-धत्त की क्या बात है ? मैं तो तुम्हारी ही बात दुहरा रहा हूँ '—मोहन ने मुस्कुरा कर कहा।

"अब चुप भी रहो कि बेशर्मी पर ही उतर आए हो !"—शैल ने उसे झिड़की दी।

मोहन कुछ बोलने ही वाला था कि नौकर ने आकर कहा कि मालिक (रामनाथ)का फोन आया है। सुनकर शैल तुरन्त उठकर खड़ी हुई। बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा था। मोहन के सामने उससे शर्म के मारे बैठा नहीं जा रहा था। न उसकी ओर देखते ही बनता था, न कुछ बोलते ही और न भागते ही।

शैल उठ खड़ी हुई और कनखियोंसे मोहन की ओर देखा और झटके के साथ कोठरी के बाहर चली गई।

क्षण भर तक नौकर भी विमूढ़-सा खड़ा रहा, फिर वह भी अपनी बीबी जी के पास पहुँच गया !

मोहन मुस्कुरा उठा।

१५

हंसिनी-सी तैरती हुई मरकरी कार बाग के दरवाजे की बगल में रुक गई।

दरवाजा खोलकर शैल ने कहा—"उतरिए हुजूर, बाग़ आ गया!"

"बहुत अच्छा! "—मुस्कुराकर मोहन ने कहा और एक सिगरेट सुलगाकर ओवरकोट की दाहिनी जेब में दाँया हाथ डालकर बड़ी शान से उतरा, जैसे सचमुच किसी राज्य का राजकुमार शाही बाग़ में जाने के लिए-कार से उतर रहा हो।

शैल उसके उतरने का ढंग देखकर मुस्कुरा पड़ी।

"जरा सम्भल कर चलिएगा सरकार, कहीं नाजुक-नाजुक पैरों में मोच न आ जाय '—शैल मुस्कुरा उठी।

"शुक्रिया! "—मोहन ने कहा—"पैरों में मोच आ जाने का डर तो नहीं है और अगर कहीं डर लगेगा भी तो तुम दूर नहीं हो, तुम्हारा सहारा ले लूँगा "

"इसे बाँदी अपनी खुशनसीबी समझेगी!"—अपने सिर को जरा-सा झुकाकर शैल ने कहा—"आइए, चलिए "

और मोहन शैल को अपनी बगल में लेकर आगे बढ़ चला।

बाग़ करीब-करीब भर चला था। युवक-युवतियाँ, बच्चे-बूढ़े, सभी दिन भर शहर की उमस भरी हवा में साँस लेने के बाद सर्दियों की भी साँझ को ताजी हवा खाने और मन बहलाव करने के लालच में आ जाते थे।

बच्चों का मन बहलाव तितलियों और फूलों से खेलने में हो जाता

था। बूढ़े, युवकों और युवतियों को देखकर अपनी जवानी के रङ्गीन दिनों का स्वाद देखकर अपना मन बहला लेते थे।

और युवकों-युवतियों के लिए वह बाग मन बहलाने के अलावा और भी महत्त्व रखता था। शहर की चारदीवारी में न मिल सकने के कारण प्रेमी-प्रेमिका घूमने के बहाने इसी बाग में शाम-सवेरे मिलकर अपनी-अपनी कह-सुन लेते थे।

वह बाग उनके लिए भी तीर्थ-स्थान था, जिन्हें प्रेम नसीब नहीं हुआ था और न भविष्य में होने की आशा थी। वे यहाँ आते। रंग-बिरंगी युवतियों को देखकर अपने दिल की तपिश को शान्त कर लेते।

शैल और मोहन साथ साथ बाग को लाल कंकड़ों से पीटी हुई पतली-पतली सड़कों पर आगे बढ़े जा रहे थे।

वे लोगों को देखते, लोग उन्हें देखते। फिर वे आगे बढ़ जाते और वे अपने में मशगूल हो जाते।

दोनों कहीं बैठे नहीं, बस इधर-उधर घूमते रहे, फूलों की क्यारियों को देखते रहे, फूलों की तरह मासूम बच्चों को देखते ही रहे, तितलियों की तरह फुदकने वाली युवतियों को और उनके पीछे भौंरों की तरह भागने वाले युवकों को देखते और देख-देखकर मुस्कुराते रहे।

एक निकुँज के पीछे एक युवक एक युवती को अपनी बाँहों में खींच कर प्यार करने ही जा रहा था कि शैल और मोहन वहाँ पहुँच गए। घबड़ा कर दोनों अलग हो गए और क्षण भर की विमूढ़ता के बाद लजा कर भाग गए।

मोहन ने मुस्करा कर शैल की ओर देखा। शैल के गालों पर भी अनायास ही लाली दौड़ गई। कुछ बोली नहीं, चुपचाप आगे बढ़ गई।

बाग के पिछले हिस्से में आकर मोहन ने कहा—"भई, अब तो मैं थक गया हूँ, मुझसे चला नहीं जायेगा। मैं तो यहीं बैठ रहा हूँ।"

और अपनी बात समाप्त करने के साथ ही वह हरी-हरी घास पर बैठ भी गया।

शैल बैठी नहीं। खड़े ही खड़े बोली—"अभी इसी उम्र में तुम्हारा यह हाल है, तो आगे की तो राम ही जाने · ."

"राम क्या जानेंगे। मैं स्वयं जानता हूँ "—मोहन ने कहा—"और तुम्हारी उम्र तो मुझसे कम है, और तुम बीमारी से भी नहीं उठी हो। तबियत हो तो और घूम लो, पर मैं तो तुम्हारा साथ नहीं दे सकूँगा · "

शैल क्षण भर तक चुपचाप खड़ी रही, फिर आगे बढ़ गई।

मोहन मुस्कुरा उठा। समझ गया कि यह नारी का मान है। उसका मन हुआ कि रोक कर उसे मना ले, पर थकान के कारण उठ न सका, बैठा ही रहा।

शैल रुकी नहीं। न मुड़कर पीछे ही देखा। आगे बढ़ती ही गई।

और जब वह भीड़ में खो-सी गई तब मोहन की आँखें लौट कर अपने सामने के उजड़े-उजड़े-से मैदान पर फैल गई।

ऐसे ही उजड़े-उजड़े-से मैदान के बीच में बसी छोटी-सी बस्ती में उसका घर था, छोटा किन्तु साफ सुथरा। बस्ती के अच्छे मकानों में से एक!

उसका घर!

और तब अनायास ही उसकी आँखों में उसका बचपन सजीव हो उठा · शहर और गाँव की सीमा के पार की उस बस्ती के उस छोटे से घर का वही चिराग़ था। उसके माँ-बाप उसको अपनी पलकों पर उठाए फिरते थे। मौजों से भरी उसकी किश्ती धीरे-धीरे बढ़ रही थी कि, सहसा तूफ़ान आ गया।

ऐसा तूफान जिसने उसकी ज़िन्दगी बदल दी, उसे कुछ से कुछ बना दिया।

बस्ती के साहूकार से अपने मित्र की बहिन की इज्जत बचाने में उनके पिता की जान गई। जिस समय उसके पिता ने इस दुनियाँ से विदा ली, वह बस्ती के दूसरे लड़कों के साथ खेल रहा था।

"राम नाम सत्य है"—की आवाज़ सुनकर वह खेल छोड़कर भाग आया। भाग कर उसने देखा कि उसी के घर के आगे भीड़ लगी है। उसने समझा कि कोई तमाशा होने वाला है। वह तालियाँ बजाने लगा। उसे क्या पता था कि उसका जनक आज से उसे छोड़कर ऐसी दुनियाँ में हमेशा के लिए चला जा रहा है, जहाँ जाकर फिर काई वापस नहीं आता, चाहकर भी नहीं।

रामनाम सत्य है की आवाज़ के साथ जब उसके पिता का शव उठा तो वह किलकारी मार उठा। उसके छोटे-छोटे दाँत चमक उठे।

लागों ने गीली आँखों से उसकी ओर देखा।

उन आंखों का देखकर वह डर गया और डरकर अन्दर अपनी बिलखता माँ के पास भाग गया। उसे देखते ही उसकी माँ और भी जोरों से रोने लगी। उसने चकित दृष्टि से अपने माँ के पास बैठी हुई रोती औरतों का और फिर अपनी माँ को देखा।

उसका समझ म नहीं आ रहा था कि बाहर खड़े लोगों की आँखें भींगी-भींगी क्यों थीं और माँ के साथ-साथ ये औरतें भी क्यों रो रही हैं। समझ तो नहीं सका, फिर भी रो पड़ा।

उसकी माँ ने उसे अपने सीने से लिपटा लिया।

कई दिनों तक जब उसने अपने पिता को नहीं देखा तब उसने पूछा—"अम्मा, बापू ? "

माँ कुछ बोलती नहीं, केवल अपनी भरी भरी आँखें आसमान की ओर उठा देतीं और तब वह सोच कर चुप हो जाता कि उसके पिता आसमान पर गए हैं, एक-दो दिन में आते ही होंगे !

पर पिता जी नहीं आए। समय ने उसे बता दिया कि उसके पिता

लौट आने के लिए वहाँ नहीं गए हैं और तब उसकी भी आँखें भर कर अनायास ही आकाश की ओर उठ जातीं।

समय के साथ-साथ उसकी माँ भी अपने गम को उसके लिए भूलती गईं। मकान का निचला हिस्सा उन्होंने दस रुपए महीने किराए पर उठा दिया और खुद उसके साथ ऊपर रहने लगीं।

सुबह-शाम वे उसे पढ़ातीं और दिन को दूसरों के कपड़े सिलतीं। इस तरह उसके दिन बीत रहे थे।

वह हाई स्कूल में पहुँच चुका था। माँ और भी परिश्रम करने लगी थीं कि उसे किसी भी बात की तकलीफ न हो, अपने पिता का अभाव वह महसूस न करे।

अपनी माँ में वह इतना खो गया था कि अपने पिता को वह सचमुच भूल बैठा। माँ के सिवा वह किसी और की जरूरत नहीं महसूस करता था।

दिल लगाकर वह पढ़े जा रहा था ताकि जल्दी से जल्दी वह अपने माँ के दुःखों को दूर कर सके, उसे कमा कर खिला सके, उसकी सेवा कर सके।

पर उसकी माँ जैसे उसकी सेवा नहीं चाहती थीं, उसकी कमाई नहीं देखना चाहती थीं और शायद इसीलिए उसके हाई स्कूल पास करते ही ऐसी बीमार पड़ीं कि फिर न उठ सकीं। जितना उससे हो सकता था, उसने सब कुछ किया पर अपनी माँ को न बचा सका। वे उसे छोड़कर चली ही गईं और वह बिलखता हुआ उन्हें जाती देखता रहा।

अपनी माँ का शव-दाह करके श्मशान से अभी वह लौटा था कि उसके स्वर्गीय पिता के मित्र, जिनकी बहन की इज्जत बचाने में उनकी जान गई थी—कुर्क अमीन के साथ उसके दरवाजे पर खड़े थे।

उसकी समझ में नहीं आया कि बात क्या है। उसने चाचा (अपने पिता के मित्र को वह चाचा ही कहा करता था) से पूछा। उन्होंने बताया

कि उसके पिता ने उनसे कुछ कर्ज लिया था, जो बढ़ते-बढ़ते सात हजार तक पहुँच चुका है, और अब न उसके पिता रह गए हैं और न उसकी माँ। रुपए वसूल होने की आशा न देखकर वे मकान पर कुर्की ले आए हैं।

भरे गले से उसने कहा—"पर अभी तो मैं जिन्दा हूँ चाचा! आपका रुपया मैं पाई-पाई अदा कर दूँगा। बगैर अदा किए मैं मरूँगा नहीं, इतना विश्वास आप रक्खें ..."

चाचा ने मुँह बनाकर कहा—"कल का लौंडा मेरे सात हजार रुपए अदा करेगा? अमीन जी, मकान में ताला लगाइए!"

"गजब मत कीजिए चाचा जी। अगर आपने मकान में ताला लगवा दिया तो मैं बेआसरा हो जाऊँगा। और सब कुछ तो छिन गया है, अब सिर पर के इस छप्पर को तो मत छीनिए ..."—उसने रोकर कहा।

पर चाचा तो जैसे पत्थर के बने थे।

"मुझ पर दया करो चाचा। मैं मर जाऊँगा। पिता जी का, उनकी दोस्ती का तो कुछ ख्याल कीजिए।"

"उन्हीं की दोस्ती का ख्याल करके तो मैं अब तक चुप रहा ..." चाचा ने कहा—"पर दोस्तीमें अपने रुपये मैं नहीं डुबो सकता!"

"आपके रुपए डूब कहाँ रहे हैं, चाचा! मैं देने के लिए तो कह रहा हूँ। जब मैं न देने को कहूँ तो आप कुर्क करा लें ..."

पर चाचा ने कुछ नहीं सुना। मकान कुर्क करा लिया। नीचे के हिस्से में रहने वाले बिचारे किराएदार को निकाल दिया।

आँखों में आँसू भरे वह देखता रहा, पर कुछ कह नहीं सका, कर नहीं सका।

वही हालत थी कि घर जल रहा था और घर वाला खामोश खड़ा था.. ...

उसके अतीत की लड़ियाँ पीछे से शैल ने कन्धे पर हाथ रख कर

बिखेर दी। अपनी आँखों में भर आए आँसू को सुखाकर वह पीछे मुड़ कर देखे-देखे कि शैल ने ताजे फूलों की माला उसके गले में डाल दी।

वह अचकचा गया। उसे विश्वास नहीं था कि शैल इतनी जल्दी इतनी आगे बढ़ जायेगी।

बोल उठा—"यह क्या ? यह क्या किया तुमने शैल .. ?"

शैल ने उसकी ओर ऐसे देखा, जैसे इस चीज का उसके लिए कोई महत्व ही नहीं हो।

बोली—"क्या हुआ ? क्या कर दिया मैंने ?"

मोहन बोला—"तुमने बी० ए० कर लिया और 'ला' भी, पर अभी तुम सात साल की बच्चो से भी अधिक नासमझ भोली और मासूम हो। किसी एकान्त स्थान में रात शुरू होने की वेला में किसी पुरुष के गलेमें माला डाल देने का अर्थ शायद इसीलिए नहीं जानती !"

तुनुक कर शैल बोली—"न मैं जानती हूँ और न जानना चाहती हूँ। और अगर तुम्हें पसन्द न हो तो वापस कर दो।"

"वापस तो करना ही होगा शैल, पर यह बता लेने के बाद कि इसका अर्थ क्या होता है. ..?"—मोहन ने कहा।

शैल ने उसकी ओर ऐसे देखा जैसे पूछ रही हो कि बताओ, इस तरह माला पहना देने का क्या अर्थ होता है।

अपनी सूखती जबान को तर कर मोहन ने कहा—"पुराणों में बताया गया है कि गन्धर्व विवाह के समय ही इस ढंग से माला पहनाई जाती है .."

सुनकर शैल क्षण भर को ठगी-सी खड़ी रह गई, फिर शर्मसे दुहरी हो उठी।

अपने मुँह को आँचल में छिपा कर वह दूर खड़ी हो गई।

"शैल ..!"—मोहन ने पुकारा।

पर शैल ने जैसे सुना ही नहीं। चुपचाप शर्मायी-शर्मायी-सी अपने दाहिने पैर के अँगूठे से जमीन कुरेदती रही।

"सुनो तो शैल इधर, तुमने अभी अधूरा ही काम किया है, मुझे उसे पूरा कर लेने दो..."—मोहन ने कहा।

पर शैल पास नहीं आयी। वहीं से धीरे से उसने कहा—"तुम आज बहुत शरारत करने लगे हो। मैं तुम्हारे पास नहीं आऊँगी..."

"सुनो शैल...!"

शैल चुप, जैसे बोलना वह जानती ही नहीं।

"तुम्हें मेरी सौगन्ध शैल, जो न पास आओ.!"—मोहन ने अपनी कसम दिलायी।

शैल ने शर्म से झुकी-झुकी-सी आँखों को मुश्किल से ऊपर उठाया और धीरे से बोली—"कसम मत दिलाओ। मैं नहीं आऊँगी."

तेजी से उसके पास आकर मोहन ने कहा—"अगर यही बात थी तो तुमने मेरे गले में माला क्यों डाली थी?...."

"मैंने जान बूझ कर तो नहीं..."

मोहन बीच ही में बोल उठा—"पर अब तो जान गई हो कि इसका क्या अर्थ होता है। और यदि अब भी चाहती हो तो मेरे गले से माला निकाल सकती हो। विश्वास रक्खो मैं कुछ भी नहीं कहूँगा, कभी भी नहीं कहूँगा...."

शैल ने एक बार मोहन को और एक बार मोहन के गले में पड़ी माला को देखा और फिर अपनी आँखें झुका लीं।

मोहन मुस्कुरा पड़ा। बोलना—"जानता था कि तुम ऐसा नहीं करोगी, कर नहीं सकती, क्योंकि जो मेरे मन में है वही तुम्हारे मन में भी है...."

और अपनी बात समाप्त करते-करते उसने अपने गले से माला निकाल कर शैल के गले में डाल दी और उसका चिबुक पकड़ कर मुँह

ऊपर उठा दिया और बोला—"जिस काम को तुमने अधूरा छोड़ दिया था, मैंने उसे पूरा कर दिया!.."

शैल कुछ बोली नही। नई दुल्हन की तरह चुपचाप शर्मायी-शर्मायी सी खड़ी थी।

"शैल! ."

शैल ने अपनी आँखें ऊपर उठायीं, शर्म के नशे में डूबी हुई दो आँखें।

मोहन का मन उन आँखों की गहराई में डूब-डूब-सा गया।

उसके हाथ बढे।

और शैल को अपनी आग़ोश में बाँध लिया।

शैल शर्मायी-शर्मायी-सी उसके सीने में सिमट गई।

और जब उसने शर्म से सुर्ख हो गए अपने चेहरे को ऊपर उठाया, तो मोहन ने सर्दी से ठिठुरते चाँद की कापती चाँदनी को अपने प्यार का गवाह बनाकर उसके होठों का प्यार ले लिया और अपने होठों का प्यार दे दिया।

शैल ने शर्मा कर अपना मुँह उसके सीने में छिपा लिया और मोहन की उंगलिया उसके नागिन जैसे केशों में उलझ गईं।

ऊपर, आकाश पर के चाँद का भी मन प्यार लेने और देने के लिए ललच उठा।

पर उसे प्यार करनेवाला कोई नहीं था, इसलिए वह सिसकने लगा। उसके साथ-साथ उसके पड़ोसी सितारे और उसकी चादनी भी सिसकने लगी।

———

१६

आसमान के साथ-साथ मोहन की भी आँखें खुलीं।

अंगड़ाई लेकर वह उठ बैठा और चारपाई की बगल में रक्खी छोटी-सी तीन पाँव वाली मेज पर से सिगरेट और सलाई उठाकर उसने सुलगाई और अखबार उठाकर पढ़ने लगा।

अंतर्राष्ट्रीय तनातनी के बीच से होकर उसकी दृष्टि एक कोने में पूर्णिया की भुखमरी के बारे में छपे समाचार पर पड़ी। उसने पढ़ा कि वहाँ के लोगों को खाना न मिलने के कारण पेड़ की छालों; जड़ों और घासों पर जीवित रहना पड़ रहा है। इससे उनके पेट की क्षुधा थोड़ी देर के लिए शान्त तो हो जाती है, पर बाद में उन्हें अन्य कष्ट दायक बीमारियों का शिकार बन कर कीड़ों की मौत मरना पड़ रहा है।

पूँजीशाही ने आज आदमी को आदमी न रहने देकर जानवर ही नहीं, मोरी में रेंगने और मरने वालों की श्रेणी में ला खड़ा कर दिया है सोचा मोहन ने— तभी तो लोग मरते जा रहे हैं, जैसे यूँ मर जाना उनके लिए साधारण-सी बात हो। पर वे विरोध नहीं कर सकते, आवाज नहीं उठा सकते कि हम मरना नहीं; जीना चाहते हैं। हमें जिन्दगी चाहिए, इन्सानों की जिन्दगी जो हमसे छीन कर तिजोरियों, तहखानों में बन्द कर दी गई है।

कीड़ों की तरह मरने वालों को जीने के लिए संघर्ष करना पड़ता है, विद्रोह करना पड़ता है। पर उनमें इतनी शक्ति नहीं रहने दी गई है कि वे अपनी जिन्दगी राजों, नवाबों, ताल्लुकेदारों, जगीरदारों, पूँजीपतियों और उनकी व्यवस्था की तिजोरियों में बन्द कर दी गई अपनी जिन्दगी

को जबर्दस्ती छीन लें। वे मर चुके हैं। उनकी आत्मा मर चुकी है। उनकी शक्ति मर चुकी है। विद्रोह-क्रान्ति करने की प्रेरणायें मर चुकी हैं। वे कुछ नहीं कर सकते। कुछ नहीं कर सकते, इसलिए मर रहे हैं, तिल-तिल कर, तड़प-तड़प कर बिलबिला-बिलबिला कर। और उन्हें मारने वाले उन्हें मरते देखकर मुस्कुराते हैं, हँसते हैं, रंगरेलिया मनाते हैं और मरने वाले यह देख-देखकर भी मरते जाते हैं, मर रहे हैं।

मोहन के मन में झल्ल से लौ जल उठी। कोशिश करने पर भी वह नहीं समझ पाता कि आखिर यह सब कब तक चलता रहेगा। कल तक वह भी मरने-मरने की स्थिति में था, आज शैल ने उसे मौत के अन्धकार में से निकाल कर जीवन के मधुर प्रकाश में ला खड़ा कर दिया है।

कल तो अन्धकार में उसे भी उस अन्धकार से निकलने का कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था। औरों की तरह वह भी भटक रहा था, ठोकरें खा-खाकर अन्धकार में खोया जा रहा था।

पर आज जब कि वह प्रकाश में आ गया है, उसकी आँखें चौंधिया गई हैं। उस चौंध में वह सब कुछ भूल गया है। भूल गया है कि कल तक वह भी अन्धकार में था, अन्धकार में से निकलने के लिए छटपटा रहा था, भूल गया है कि उसके जैसे जाने कितने उस अन्धकार में पड़े मर रहे हैं, बाहर आने के लिए छटपटा रहे हैं। वहाँ से निकल आने के बाद उसे उन लोगों के बारे में कुछ सोचना चाहिए। सोचना चाहिए और करना चाहिये। पर वह कर नहीं रहा है। अपने को भूल गया है, इसलिए नहीं कर रहा है।

उसे अपने पर ग्लानि हो आयी। उसे अपनेको, अपने पिछले दिनों को, पिछले दिनों के हमराहियों को नहीं भूलना चाहिए।

लेकिन यह ग्लानि केवल कुछ ही क्षणों तक रही। वह सोचता है, यह दुनियाँ है। यहाँ भावुकता से कोई काम नही चलता। यहाँ आदमी

को व्यावहारिक होना चाहिए। भावुकता आदमी को कहीं की नहीं रखती, यह उसने अपनी ही जिन्दगी में देखा है।

भावुकता में आकर यदि उसके पिता, अपने उस मित्र की बहन की लाज बचाने में अपनी जान न देते, तो कल तक उसकी जो अवस्था थी वह शायद न हो पाती। माँ के मरते ही पिता जी के उस मित्र ने उसे उसी के घर से किस बर्बरता पूर्वक निकाल दिया, आज भी वह नहीं भूल पाता। नहीं भूल पाता कि उसके बाद उसकी जिन्दगी किस बुरी दशा में बीती। पहनने को ठीक से कपड़ा नहीं, रहने को जगह नहीं, पेट भरने को भोजन नहीं। उसने भीख माँगी, मजदूरी की, अखबार बेचे, ट्यूशन किए, कहानिया लिखीं, उपन्यास लिखे। क्या क्या नही किया। पर न ठीक से पढ़ सका, न ठीक से पहन सका, न ठीक से खा सका।

उस समय उसपर किसी ने दया नहीं की। उसकी सहायता नहीं की। और जब वह आज इस अवस्था में पहुँच गया है, तो वह क्यों किसी के लिए सोचे, क्यों किसी के लिए परेशान हो, क्यों किसी के लिए अपने सुख को छोड़ दे?

यही ठीक है। उसे यही करना चाहिए। तभी वह इस दुनियाँ में जीवित रह सकेगा, वरना पूर्णिया के उन लोगों की तरह उसे भी मरना पड़ेगा, जो वह नहीं चाहता, कभी नहीं चाहेगा।

विचारों में वह बहा जा रहा था कि उसे झटका-सा लगा। आँखें उठाकर उसने दरवाजे पर देखा। शैल का नौकर उसके लिए नाश्ता लेकर खड़ा है।

अन्दर आकर उसने कहा—"अभी तक आपने मुँह नहीं धोया?"

"आज उठने में देर हो गयी। तुम रखो, मैं अभी आता हूँ..." —कह मोहन उठने को हुआ।

"चाय पी लीजिये नहीं तो ठण्ढी हो जायेगी...."—नौकरने कहा।

मोहन रुक गया। हँसकर बोला—"लाओ भाई, आज मैं भी जानवरों की श्रेणी में आ जाऊँ!"

नाश्ता मेज पर रख कर, उसने चाय की प्याली मोहन की ओर बढ़ा दी।

चाय की प्याली लेकर मोहन ने पूछा—"शैल अभी सोकर नहीं उठी क्या?"

नौकर मुस्कुरा पड़ा। बोला—"बीबी जी तो इस समय बाथरूम में हैं!"

"फिर मेरे लिए क्यों नाश्ता ले आए? अपनी बीबी जी को बाथरूम से निकल आने देते, तब ले आते। हमलोग साथ ही पीते..." मोहन ने कहा।

"उन्होंने ही ले आने के लिए कहा, क्योंकि आज वे नाश्ता कुछ देर में करेंगी।" नौकर ने बताया।

"नाश्ता देर में करेंगी। क्यों"

"आठ साढे आठ बजे मालिक आयेंगे। उन्हीं के साथ नाश्ता करके सुबोध एडवोकेट के यहाँ जायेंगी·!" उसने कहा।

"क्यों कोई मुकदमा है क्या·?"

"जी नहीं। बीबीजी सुबोध के यहाँ प्रैक्टिस करना सीखेंगी·!"—नौकर ने कहा।

"ओह··!" मोहन हँस पड़ा—"तो अब तुम्हारी बीबीजी भी काला लबादा पहन कर वकालत करेंगी, जज के सामने कहेंगी—"माई लार्ड!"

नौकर भी हँस पड़ा।

"अच्छा अब मैं चलूँ! अभी बहुत काम करना है····"—कह, वह चला गया।

मोहन चाय पीने लगा।

चाय पीकर प्याली उसने मेज पर रक्खा ही था कि कोठरी की मालकिन घबड़ायी हुई अन्दर आयी।

उसे देखकर मोहन ने पूछा—"क्या बात है नानी। तुम घबड़ाई-घबड़ाई-सी क्यों हो ?"

बुढ़िया ने कहा—"बहू की तबीयत अचानक ही खराब हो गई है बेटा! काम करते करते एकाएक वह बेहोश हो गई है। चलकर उसे देखो तो!"

मोहन ने उसकी ओर देखा। यह उसकी नानी है, उसकी सगी नानी की सगी बहन। पर कल तक वह उसे जैसे पहचानती ही न थी। अपने बौड़म लड़के को बहू लाते ही उसने उसे अपने यहाँ आने से रोक दिया और किराया लेने के लिए उसने उसे हजारों गालियाँ दी होंगी। किराया न मिल पाने पर उसे कोठरी से निकालने को भी तैयार हो गई थी।

पर आज जब उसका काम पड़ गया है, तो वह उसे बेटा कह रही है, जैसे वह सचमुच ही उसका बेटा है। अपने बहू की तबियत खराब होने पर उसके पास दौड़ी आयी है, जैसे वह ही उसका सब कुछ है। अब जब वह उसकी बहू को पास से देखेगा, उसके बदन को छूयेगा तो वह बुरा नहीं मानेगी, उसे डर नहीं लगेगा क्योंकि उसकी बहू बीमार है, उसे सहायता की जरूरत है।

उसने चाहा कि कह दे—निकल जाओ मेरे यहाँ से। तुम्हारी बहू मरे या जिए, मुझसे कोई सरोकार नहीं, मैं नहीं चलूँगा तुम्हारे साथ। पर कह नहीं सका, चाह कर भी नहीं।

उसे चुप देखकर बुढ़िया गिड़गिड़ायी—"क्या सोच रहे हो, बेटा? उठो, जल्दी करो!"

मोहन को लगा कि वह अपने को रोक नहीं पायेगा, उसे उस बुढ़िया के साथ जाना ही पड़ेगा।

चुपचाप चारपाई पर से उतर पड़ा। सदरी पहन कर पाँव में चप्पल डाल ली और बोला—"चलो!"

बुढ़िया का झुर्रीदार चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। बोली कुछ नहीं। चुपचाप बाहर निकल आयी।

बाहर आकर मोहन ने दरवाजा बन्द किया और बुढ़िया के साथ चल पड़ा।

उसकी बहू के पास पहुँच कर मोहन ने देखा कि उसका बौड़म लड़का अपनी बेहोश पत्नी के पास बैठा कभी हँसता है, कभी मुस्कुराता है, कभी हाथों की ऊँगलियाँ चटखाता है, कभी अपने नाखून काटता है, और कभी-कभी आश्चर्य से अपनी पत्नी की ओर देखता है, जैसे वह उसकी पत्नी नहीं, किसी अजायब घर से पकड़ लाई गई कोई अजीब किस्म की चिड़िया हो।

झुककर उसने उसके चेहरे को देखा। किसी अव्यक्त पीड़ा की स्पष्ट छाया—जिसे दबाने का वह अब तक प्रयत्न करती आ रही थी, पर अब दबा नहीं पा रही है—उसके चेहरे पर छायी हुई थी। उसके होंठ जलन के मारे सिकुड़ गए थे, जैसे उनकी जलन अभी तक दूर न हुई हो।

आँख घुमा कर उसने उसके पति को देखा, और रोग उसकी समझ में आ गया।

पास ही खड़ी बुढ़िया से उसने कहा—नानी, बीमारी तो बहुत बढ़ गई है। ठीक करने में काफी पैसे लगेंगे।"

पैसों का नाम सुनते ही बुढ़िया की सहानुभूति जाती रही। उसने कहा—"इतने पैसे मेरे पास कहाँ हैं, बेटा! दो-चार में अगर हो जाय तो कहो, कोशिश करूँ!"

मोहन के जी में तो आया कि रुपयों की इस दीवानी का गला वह जोरों से टीप दे। उसे अपने रुपए की चिन्ता है, अपनी बहू की नहीं। रुपये की कीमत उसके लिए जिन्दगी से ज्यादा है।

सहसा उसे ग्लोरिया याद हो आई और वह बोला—"मेरी जान पह-

चान की एक नर्स है नानी। मैं उसे बुला लाता हूँ। शायद तुम्हारे दो-चार रुपए भी बच जाँय!"

"तुम जुग-जुग जियो बेटा!..." बुढ़िया ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम जल्दी से जाकर उसे बुला लाओ!"

"बहुत अच्छा! पर इसे चारपाई पर लिटाकर तब तक सिर और मुँह धुलाओ ·"—मोहन ने कहा।

बुढ़िया के बौड़म लड़के ने हकलाते हुए कहा—"हटो अम्माँ! मैं इसे सुला दूँ।"

"हट भाग कलमुँहा कहीं का"—बुढ़िया ने उसे डाँटा—"अगर तू ही ठीक होता, तो काहे को मुझे इतनी परेशानी होती!"

मोहन ने बुढ़िया की ओर देखा। उसे लगा, जैसे बुढ़िया सब कुछ जानती है।

बुढ़िया ने मोहन से कहा—"तू ही इसे उठाकर चारपाई पर लिटा दे बेटा! मुझमें तो आज इतनी भी ताकत नहीं रह गई है, कि एक बाल्टी पानी उठा सकूँ!"

मोहन को झिझक सी लगी।

बुढ़िया ने कहा—"अरे तू तो झिझक रहा है। पगला! अरे तू गैर है क्या? चल उठाकर उसे लिटा दे और जिसे बुलाना है, बुला ला!"

अब मोहन के आगे कोई चारा नहीं रह गया। झुककर उसने की बहू को उठाकर चारपाई पर लिटा दिया।

"अब तुम उसे देखो! मैं नर्स को लिवाने जा रहा हूँ!" कह मोहन तेजी से बाहर चला गया।

बुढ़िया क्षण भर चुपचाप खड़ी रही, फिर लोटे में बाल्टी से पानी लेकर बहू के मुँह पर पानी के छींटे मारने लगी।

१७

ग्लोरिया को लेकर जब मोहन लौटा तो बुड़िया की बहू होश में आ चुकी थी।

मोहन ने बुढ़िया से कहा—"तुम इधर बाहर आ जाओ। उन्हें देखने दो!"

बुढ़िया चुपचाप मोहन के साथ कोठरी से बाहर चली आयी।

बाहर आकर मोहन चारपाई पर बैठ गया, और बुढ़िया जमीन पर।

थोड़ी देर बाद बुढ़िया ने पूछा—"क्यों बेटा तुम्हें कुछ अन्दाज लगा कि बहू को क्या हो गया है?"

मोहन ने तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा, जैसे उसके मन के सच झूठ को पकड़ लेना चाहता हो।

बोला—"अब मैं क्या बताऊँ नानी। नर्स अभी आकर खुद ही बता देगी।"

बुढ़िया ने ठंढी साँस लेकर कहा—"तुम चाहे न बताओ बेटा पर मैं भी कुछ कुछ समझती हूँ।"

मोहन ने अपनी आँखें उसके चेहरे पर गड़ा दी।

वह कहती रही—"गलती मेरी ही थी। यदि मैं लालच में पड़कर उसकी शादी न करती, तो काहे को आज उसे इतनी पीड़ा होती और उसकी यह हालत होती!"

मोहन की आशंका सच निकली। यह बुढ़िया सब कुछ जानती है।

धीरे से बोला—"चिन्ता न करो नानी। नर्स बहुत ही चतुर है।

उसका ज्ञान किसी अच्छे डाक्टर से कम नहीं है। वह तुम्हारी बहू को ठीक करने में कुछ भी न उठा रखेगी।"

बुढ़िया मलिन हँसी हँसी। उसे मोहन की बातों पर विश्वास नहीं हो रहा था। भला, ऐसे रोगों का भी कहीं दवा से इलाज हो सकता है?

मोहन चुप रहा।

उसे चुप देखकर बुढ़िया भी चुप हो गई।

थोड़ी देर बाद ग्लोरिया अन्दर से आयी। उसकी पेशानी पर परेशानी की रेखायें थी, पर आँखों में विश्वास की लहर थी, जैसे ये परेशानियाँ क्षणिक हैं, जरा से प्रयास से दूर हो जायेंगी।

मोहन के पास बैठकर उसने थोड़ी सी उवासी ली।

"कहो ग्लोरिया, किस निष्कर्ष पर पहुँची तुम? "—मोहन ने पूछा।

"तुम्हारी आशंका ठीक निकली। उसे हिस्टीरिया की बीमारी हो गई है! " वह बोली—"शीघ्र ही उसे दूर करने का प्रयास नहीं किया, तो उसकी जान खतरे में पड़ सकती है!"

उन्हें अंगरेजी में बात-चीत करते देख बुढ़िया खिसिया-सी गई। जाने क्या आपस में ही गिटपिट-गिटपिट कर रहे हैं। रोगिणी मेरी बहू है, मुझसे बातें करनी चाहिएँ इन लोगों को, पर ये मेरी ओर देख भी नहीं रहे हैं। खिसियानी अवश्य पर कुछ बोली नहीं। चुप रही।

"उसका इलाज करने वाला ही यदि इस काबिल होता तो उस बेचारी को इस रोग का शिकार ही क्यों होना पड़ता' "—मोहन ने कहा—"मैं तो समझता हूँ कि यह मर्ज ला-इलाज है! ..."

"भूलते हो। कोई भी मर्ज ला-इलाज नहीं है, यदि मर्ज का ठीक ठीक पता चल जाय और इलाज करने वाला चतुर हो!"—ग्लोरिया ने कहा।

"तो अब रोगिणी के ठीक हो जाने की आशा है! मर्ज का पता

तो तुम्हें चल ही गया, और इतने दिनों तक काम करते-करते तुम दक्ष तो हो ही गई हो " मोहन ने कहा—"फिर देरी किस बात की है ? शुरू कर दो अपना इलाज।"

ग्लोरिया मुस्कुरायी। बोली—"जितनी आसानी से तुमने यह बात कह दी है, उतना आसान इलाज करना नहीं है। अभी रोग की जड़ में मैं नहीं पहुँच पायी हूँ, जहाँ पहुँचने में थोड़ा समय लगेगा।"

"तो आज ही से वहाँ पहुँचने की कोशिश कर दो, इसे मेरा काम समझ कर!" मोहन ने कहा।

"यदि इसे तुम्हारा काम न समझती तो भागी क्यों चली आती " ग्लोरिया ने कहा—"पर इसका इलाज यहाँ ठीक से नहीं हो सकेगा। यहाँ के कण कण से वह परिचित है जो उसके मन और मानस से उन यादों को नहीं हटने देगी और जब तक वे यादें रहेंगी, इलाज से विशेष लाभ नहीं होगा।"

"लेकिन यादों को तुम कैसे रोक सकोगी ? वे तो आकर ही रहेंगी। उन्हें भुलाने की जितनी कोशिश की जायेगी, वे उतनी ही और आयेंगी"—मोहन ने कहा।

"तुम्हा कहना किसी अंश तक ठीक भी है" उसने कहा—"पर हम स्थान और वातावरण को बदल कर उसके जोर को कम तो कर ही सकते हैं। यहाँ उसका पति हर समय उसकी आँखों के सामने रहेगा और तब वह चाहकर भी कुछ न भूल सकेगी, अच्छी होना चाहकर भी अच्छी न हो सकेगी।"

"फिर ?"

"अगर तुम इजाज़त दिला सको तो मैं उसे अपने यहाँ ले जाऊँ" ग्लोरिया कहा।

मोहन ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा और देखकर बोला—"अपने यहाँ"

ग्लोरिया ने मुस्कुरा कर कहा—"उसे गायब नहीं कर दूँगी। यह मेरे जीवन का सबसे बड़ा प्रयोग होगा। मेरा भविष्य इस प्रयोग की सफलता असफलता पर निर्भर करता है!"

बुढ़िया चुप बैठे-बैठे ऊब चुकी थी। उसने कुछ खीज भरे स्वर में कहा—"मुझे भी तो कुछ बताओ कि तुम ही लोग सब बातें कर लोगे।"

मोहन ने मुस्कुरा कर कहा—"नानी, इनका कहना है कि तुम्हारी बहू अच्छी हो जायेंगी, कुछ दिन इसमें लगेंगे!..."

बुढ़िया को थोड़ा-सा सन्तोष हुआ। बोली—"बीमारी दूर होने में समय तो लगता ही है बेटा। वह अच्छी हो जाय, बस मुझे और क्या चाहिए!"

क्षण-भर की खामोशी के बाद मोहन ने कहा—"लेकिन एक बात है नानी जी! इनका कहना है कि तुम्हारी बहू का इलाज यहाँ ठीक से न हो सकेगा...।"

बुढ़िया ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा!

"ये उसको अपने यहाँ ले जाकर इलाज करना चाहती हैं..." मोहन ने कहा।

"क्या कहा? उसे ये अपने यहाँ ले जाना चाहती हैं? क्यों? "

"इसलिये नानीजी, वहाँ उसका इलाज भी ठीक से हो सकेगा, और..."—कहते-कहते वह रुक गया। वह सोच रहा था कि बुढ़िया के मनके किस स्थल पर चोट की जावे कि उससे इनकार करते न बने!

"और क्या? "

"और यह नानी कि यदि यहाँ तुम उसकी इलाज कराओगी, तो कम से कम पाँच रुपये रोज तुम्हें देना पड़ेगा और अगर ये अपने यहाँ ले जायेंगी तो इलाज में तुम्हारा एक भी पैसा नहीं लगेगा "—मोहन ने कहा।

बुढ़िया चुप होकर कुछ सोचने लगी।

मोहन ने ग्लोरिया की ओर मुस्कुरा कर देखा, और फुसफुसा कर कहा—"मैंने बुढ़िया पर ऐसी चोट की है कि उसे 'हाँ' करना ही पड़ेगा!"

मोहन की बात सच निकली।

बुढ़िया ने कहा—"जैसा तुम ठीक समझो बेटा। अगर तुम इसे ठीक समझते हो, तो मुझे कोई एतराज नहीं है!··"

"बहुत अक्लमन्द हो तुम नानी। " मोहन ने मुस्कुरा कर कहा।

बुढ़िया भी मुस्कुरा उठी। बोली—"मेरे आगे का लड़का मुझे बेवकूफ़ बनाता है!··"

"भला ऐसा भी हो सकता है, नानी!"—कह, मोहन हँस पड़ा।

ग्लोरिया मुस्कुरा उठी।

और बुढ़िया हंस पड़ी।

"तो तुम कब उसे ले जाना चाहती हो?"—मोहन ने ग्लोरिया से पूछा।

"जब तुम कहो!···" ग्लोरिया ने कहा।

"इस समय भी? " पूछा मोहन ने।

"इससे सुन्दर बात और क्या हो सकती है··?" ग्लोरिया ने कहा—"मैं दुबारा आने से बच जाऊँगी!·· "

"और उस समय तक हो सकता है कि इस बुढ़िया का दिमाग़ बदल जाय और यह उसे न भेजे।···" मोहन ने कहा।

"यदि ऐसी आशंका है तो उसे आज ही क्या अभी ही मेरे साथ कर दो। " ग्लोरिया ने कहा।

मोहन ने बुढ़िया की ओर मुड़कर कहा—"नानी, तो कब इन्हें बुलाऊँ, बहू को लिवा जाने के लिए?"

"क्या ? फिर बुलाओगे इन्हें ? आज भेजने में कोई हर्ज है क्या ?" बुढ़िया ने पूछा।

"हर्ज तो नहीं है …।"

"फिर ?"

"मैंने समझा कि शायद तुम · ·"

मोहन की बात बीच ही में काट कर बुढ़िया ने. कहा—"तुम मुझे कब तक बेवकूफ समझते रहोगे ? साठ पार कर चुकी हूँ तो क्या हुआ ! सठिया नहीं गई हूं। तू आज ही इनके यहाँ बहू को पहुँचा आ !"

"मैं ? मैं "—मोहन अचकचा गया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर सन्देह की यह पुड़िया उसपर आज इतना विश्वास कैसे कर रही है !

वह बोली—"तुझे उसे साथ ले जाने में कोई एतराज है क्या ? वह तुमसे बदसूरत है या गन्दी रहती है, जो तुझे अनकुस लगेगा उसके साथ बैठने में ?"

"न, नहीं तो ·"

"फिर इधर-उधर क्यों करता है ·· ?" बुढ़िया ने कहा—"तुम पाँच मिनट रुको, मैं उसे तैयार कर लाती हूँ !"

और मोहन के कुछ कहने के पहले वह उठकर अन्दर चली गई।

दोनों एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कुरा उठे।

और बुढ़िया सचमुच उसे सात-आठ मिनट बाद लेकर आ गई।

मोहन ने उसे देखा। वह सिर नीचा किए शर्मायी-शर्मायी-सी खड़ी थी।

"हाँ, तो अब बहू तो तैयार होकर आ गयी है ·" बुढ़िया ने कहा—"अब तो तुम्हें इसे लिवा ही जाना पड़ेगा !"

उठकर मोहन ने कहा—"सो तो देख ही रहा हूँ, नानी ! उठो ग्लोरिया ! अब हमलोग चलें ·· "

"तो क्या पैदल ही जाओगे तुम लोग... ?" बुढ़िया ने आश्चर्य से कहा।

"भला तुम्हारी बहू को पैदल लिवा जाऊँगा, नानी ..."—मोहन ने कहा—"ग्लोरिया नाश्ता करके नहीं आयी है, उसे तुम नाश्ता कराओगी नहीं। इसलिए मैं उसे पहले अपने यहाँ नाश्ता करा के तब जाने दूँगा !"

नश्ता !

नाश्ते में पैसा खर्च होता है, और जहाँ पैसा खर्च होने का प्रश्न आ जाता है, वह हमेशा चुप रहती है और हमेशा की तरह आज भी चुप रही।

मोहन ने उसकी ओर देखा और मन ही मन मुस्कुरा कर बाहर चला आया। ग्लोरिया भी बुढ़िया की बहू के साथ बाहर चली आयी।

अपनी कोठरी में पहुँच कर मोहन ने कुर्सियों की ओर इशारा करके कहा—"तुम लोग बैठो, मैं अभी आया..."

पर उसके बाहर जाने के पहले ही ग्लोरिया बोल उठी—"तुम नाहक परेशानी उठाने जा रहे हो। मुझे अपने यहाँ पहुँचते कितनी देर लगेगी ?"

"कुछ भी देर न लगे..." मोहन ने कहा—"पर न तो यह अस्पताल है न तुम्हारा बँगला। यहाँ सब काम मेरे मन से होगा। यहाँ तुम्हारी हुकूमत नहीं चल सकती !"

ग्लोरिया मुस्कुरा कर चुप हो गई।

मोहन बाहर चला गया।

उसके जाने के बाद ग्लोरिया ने कुर्सी में गठरी बनी बैठी बुढ़िया की बहू से पूछा—"तुम्हारा नाम पूछना तो मैं भूल ही गयी। भला क्या नाम है तुम्हारा ?"

"मोहिनी..."—उसने धीरे से कहा।

"मोहिनी! जैसी तुम हो वैसा तुम्हारा नाम भी है !" ग्लोरिया ने कहा।

अपने रूप की प्रशंसा सुनकर युवतियाँ लजा जाती हैं। यह उनकी

स्वाभाविक कमजोरी होती है। मोहिनी भी इस कमजोरी की शिकार थी। उसने लजा कर अपना सिर झुका लिया।

"हाँ तो मोहिनी, जरा ठीक से बैठ जाओ" ग्लोरिया ने कहा—"ऐसे बैठने से तुम्हें तकलीफ भी होगी और शायद मोहन को अच्छा भी न लगे!"

वह नहीं समझ पायी कि ग्लोरिया को इस बात की क्यों चिन्ता है कि वह मोहन को अच्छी लगे, उसका उठना-बैठना मोहन को अच्छा लगे।

समझ नहीं सकी और बोल भी नहीं सकी। जैसे ग्लोरिया बैठी थी, वैसे ही वह भी बैठ गई।

ग्लोरिया ने पूछा—"कितने दिन तुम्हारी शादी को हो गए मोहिनी?"

"लगभग डेढ़-दो वर्ष!" धीरे से मोहिनी ने कहा।

ग्लोरिया उसकी शादी के बाद के दिनों के बारे में पूछना चाहती थी कि मोहन आ गया, इसलिए वह चुप हो गई।

चारपाई पर बैठकर मोहन ने कहा—"बस पाँच मिनट में नाश्ता आया जाता है। उसके बाद हम लोग चले चलेंगे!"

ग्लोरिया चुप रही, केवल आँखें उठाकर उसकी ओर देखा, जैसे कह रही हो कि अब तुम्हारे यहाँ आ गई हूँ, चाहे जब तक रोको, रुकना ही पड़ेगा।

"अगर किसी को एतराज न हो तो मैं सिगरेट पीऊँ ..."—मोहन ने सिगरेट की डिब्बी और सलाई उठाकर कहा।

मोहिनी तो कुछ नहीं बोली। ग्लोरिया ने हँसकर कहा—"सिगरेट की डिब्बी और सलाई उठाकर सिगरेट पीने की आज्ञा लेना तो वैसा ही है, जैसे कमरे के अन्दर आकर कमरे में आने की इजाजत माँगना!"

मोहन भी हँस पड़ा। हँसते ही हँसते बोला—"तो तुम्हें एतराज है?"

"नहीं मुझे एतराज नहीं है। मैंने तो केवल इसलिए कहा था कि आज्ञा लेने की कोई आवश्यकता नहीं थी!" ग्लोरिया ने कहा।

"ओह !"—कव मोहन ने सिगरेट सुलगा ली।

मुँह से धुयें का गुब्बार निकार कर मोहन ने दरवाजे के बाहर शैल के नौकर को देखने के लिए झाँका।

ग्लोरिया की दृष्टि मोहन की आँखों, होठों पर से होती हुई उसकी पतल-पतली उँगलियों पर जम गई। जिन उँगलियों के बीच जलती सिगरेट दबी थी, वे धुएँ के कारण पीली पड़ गई थीं।

"लगता है तुम सिगरेट बहुत पीते हो ?"—ग्लोरिया ने कहा।

"सिगरेट तो अब पीने लगा हूँ इसके पहले जब फटेहाल था, बीड़ी पीता था" मोहन ने कहा—"और सच पूछो ग्लोरिया तो इसी बीड़ी और सिगरेट ने मेरा अब तक साथ दिया है, जिन्दा रक्खा है !"

ग्लोरिया मुस्कुरा उठी। बोली—"लगता है तुम्हें इससे प्यार हो गया है !"

"होना भी चाहिए। अगर तुम किसी की जान बचाओ, तो वह तुमसे प्यार तो करने ही लगेगा !" मोहन ने कहा।

"पर जानते हो, तुम्हारे इस प्यार का परिणाम क्या होगा ?" —ग्लोरिया ने पूछा।

"वही जो हर प्यारका होता है !"—मोहन ने कहा।

"यानी ...?"

"मौत !"—मोहन ने लापरवाही से कहा।

"सिगरेट से प्यार करने का परिणाम मौत होता है, इसमें सन्देह नहीं.."—ग्लोरिया ने कहा—"पर हर प्यार का यही परिणाम नहीं होता। प्यार तो जीवन है, मृत्यु नहीं !'

"यह तो केवल कहने की बातें हैं ..."—मोहन ने कहा—"क्या तुम बता सकती हो कि किसी को प्यार ने जीवन दिया है ?"

ग्लोरिया को सहसा कोई जवाब नहीं सूझ पड़ा।

मोहन मुस्कुरा उठा। बोला—"मैं जानता था कि तुम इसका जवाब नहीं दे सकोगी, क्योंकि इसका कोई जवाब ही नहीं है!"

"यह तुम कैसे कह सकते हो · ·" ग्लोरिया ने कहा।

'इसलिए कि मैं जानता हूँ। सिगरेट होंठो से लगते-लगते अन्दर तक पहुँच जाती है और तब उसे प्यार करने वाला कैन्सर का शिकार होकर मर जाता है · ·"—मोहन ने कहा—"वही हाल स्त्रियों से प्यार करने का होता है। शुरू में सुख और आनन्द, और फिर मौत · !"

"जब जानते हो कि प्यार मौत है, तो प्यार करना छोड़ क्यों नहीं देते · ?" चिढ़कर ग्लोरिया ने कहा।

"यही तो मुसीबत है ग्लोरिया, नहीं तो जानबूझकर कौन मरता है ?" मोहन ने कहा—"प्यार एक नशा है, ऐसा नशा कि जो एक बार मुँह से लग गया, तो कम्बख्त फिर छुड़ाए नहीं छूटता। मेरी बात का विश्वास न हो तो उन परवानों से पूछ लो, जो शमा पर मरने के लिये टूटे पड़ते हैं "

ग्लोरिया को लगा कि वह निरुत्तर होती जा रही है।

मोहन हँस पड़ा। बोला—"तुम जवाब नहीं दे सकोगी, ग्लोरिया क्योंकि तुम जानती हो, तुम्हारा मन जानता है कि मैं जो कह रहा हूँ सच कह रहा हूँ!"

"तुम तो ऐसी बात कर रहे हो जैसे जो तुम कह रहे हो वह सब ठीक है . !"

ग्लोरिया की बात बीच ही में काटकर मोहन ने कहा—"सच है इस लिए कह रहा हूँ। देखा है, अनुभव किया है। तब इतने विश्वास के साथ कह रहा हूँ! "

"लगता है तुमने सिगरेट के अलावा औरों से भी प्यार किया है ? " ग्लोरिया ने कहा।

"प्यार किया हो या न किया हो, पर इस भ्रम में पड़कर लुटा

अवश्य हूँ ...''—मोहन ने कहा—"इसीलिए तो कहता हूँ कि नारी सिगरेट की तरह ही संगदिल है उससे प्यार नहीं करना चाहिए। प्यार नहीं करना चाहिए। पुरुष केवल सोचता है, पर करता ठीक उसका उलटा है....।"

मोहिनी ने अपनी आँखें उठा कर मोहन की ओर देखा—उस मोहन की ओर जिसकी वह मामी है—जो नारी की सिगरेट से तुलना कर रहा था।

ग्लोरिया कुछ बोलने ही जा रही थी कि मोहन बोल उठा—"मैं मानता हूँ जो तुम कहना चाहती हो। नारी संगदिल है, यह सुन कर तुम्हें चोट लगी होगी क्योंकि अपने बारे में यह उपमा तुम्हें क्या सभी नारियाँ को बकवास-सी लगेगी, पर सच यही है। इस पर मैं लम्बी बहस न कर केवल एक छोटा सा उदाहरण दूँगा। लड़कियों को गुड़ियों से बड़ा प्यार होता है। उतना प्यार शायद वे अपने से भी नहीं करती होगी। रात को अपने सीने से लगाकर सोती हैं, सुबह उठ कर उन्हें खिलाती हैं, उनका मन बहलाती हैं, अच्छा-सा वर तलाश कर उसकी शादी करती हैं। सब कुछ करती हैं। लेकिन उन गुड्डे-गुड़ियों का अंत क्या होता है, कैसे होता है ? शायद तुम्हें न मालूम हो पर मेरी मामी को अवश्य होगा। गुड़ियों के दिन उन्हें तालाब में ले जाकर डंडों से पीट-पीट कर डुबो देती हैं। हँसते-हँसते पीटती हैं, खिलखिलाते हुए उन्हें हमेशा-हमेशा के लिए डुबो देती हैं। अपनी प्रिय वस्तु को कोई नष्ट नहीं करता। यदि किसी कारणवश वह नष्ट भी हो जाती है, तो उसे मार्मिक क्लेश होता है। पर नारी को नहीं। वह हँसते-हँसते उस चीज, उस प्राणी का अस्तित्व मिटा देती है जिससे वह 'प्यार' करती थी। तुम बता सकती हो क्यों ? तुम क्या, मामी क्या, मेरे इस 'क्यों' का कोई जवाब नहीं दे सकता। अब भी तुम कहोगी मैं बकवास करता हूँ ..."

उसकी बात पूरी भी न होने पायी थी कि शैल का नौकर ट्रे में नाश्ता ले आया।

दूसरी मेज खींच कर उसने उस पर नाश्ता रख दिया।

मोहन ने हँस कर कहा—"मैं भी बात की रौ में कहाँ से कहाँ पहुँच गया, तुम भी कहोगी कि मैं ..."

ग्लोरिया ने गंभीर स्वर में उसकी बात बीच ही में काट दी—"तो तुम नारी को जीवन नहीं मौत समझते हो! ..."

"इसे फिर से कहने की आवश्यकता पड़ेगी क्या? नारी ऐसी मौत है कि जिसे हम जानते हुए गले से लगाते हैं, क्योंकि मौत से बचने का कोई चारा नहीं है!" मोहन ने कहा।

ग्लोरिया उदास हो उठी।

मोहिनी को लगा कि यह मोहन किस धातु का बना है। सीधी चोट करता है। जो बात मुँह में आती है, कह देता है किसी का लिहाज नहीं, जैसे वह दुनियाँ से अलग हो, दुनियाँ के लोगों को गुलाम बना रखने वाले मोह माया के बन्धनों से मुक्त हो।

मोहन हँस पड़ा। बोला—"उदास हो गई तुम! इससे उदास होने की क्या बात है भला! यह तो अपना-अपना विचार है यह जरूरी नहीं जो तुम्हारा विचार हो वही मेरा भी विचार हो। इतनी स्पष्ट बातें मैंने इसलिए नहीं कहीं कि तुम्हें, अपनी मोहिनी मामी को या औरों को अपना नहीं समझता। अपना समझता हूँ इसलिए साफ-साफ कह देता हूँ।"—क्षण भर तक रुककर फिर बोला—"खैर छोड़ो इन बातों को! नाश्ता करो। अभी तुम लोगों को पहुँच कर वापस आना है। वापस आकर काम करना है!"

ग्लोरिया बोली नहीं। चुपचाप नाश्ता करने लगी।

पर मोहिनी चुपचाप बैठी रही जैसे नाश्ता उसके लिए नहीं आया था।

"लो न मामी !..." मोहन ने कहा।

ग्लोरिया ने भी कहा—"यह तो अच्छा नहीं कि दो आदमी खायें और एक आदमी खामोश बैठा रहे। लो न ! "

और तब मोहिनी को भी विवश हो खाना पड़ा।

मोहन मुस्कुरा उठा। औरतें औरतों की ही बातें मानती हैं। यदि ऐसा न होता, तो मोहिनी उसके कहने पर नहीं, और ग्लोरिया के कहने पर क्यों खाने लगती ?

लेकिन ऐसा होना तो नहीं चाहिए। होना यह चाहिए कि औरतें औरतों की बात न मानें और पुरुष पुरुषों की।

पर आजकल जमाना कुछ उलटा-सा चल रहा है। औरतें औरतों की ओर, और पुरुष पुरुषों की ओर झुकते जा रहे हैं।

अपने इस ख्याल पर मोहन को जोर की हँसी आयी, पर मुँह में एक समोसा डालकर उसने अपनी हँसी रोक दी।

१८

मोहन अपने कमरे में बैठा चुपचाप सिगरेट पी रहा था। सिगरेट पी रहा था और सोच रहा था अपनी नानी के बारे में, नानी की बहू मामी के बारे में, मामी का इलाज करनेवाली ग्लोरिया के बारे में, शैल के बारे में, मनोरमा के बारे में और अपने बारे में।

धुएँ के छल्लों के बीच मे उनकी आकृतियाँ बनतीं और छल्ले के मिट जाने पर मिट जातीं। पर फिर छल्ला बनता और वे भी फिर उसमे सजीव हो जातीं।

नानी!

उसके माँ की माँ की सगी बहन।

लेकिन कल तक मुझे पहचानती नहीं थीं, जानकर भी अनजान बनती थीं। उसकी बहू को कहीं मैं बुरी नज़र से देख न लूँ, इसलिये मेरा अपने यहाँ आना जाना बन्द कर दिया था। कोठरी के किराए के लिए रोज़ तीन बार तक़ादा अवश्य करती थीं। सुबह, दोपहर शाम। और कभी-कभी रात को भी। तकादे के साथ गालियाँ भी देना नहीं भूलती थीं। उस दिन जब वह घायल और कंगाल हो गया था, उन्हीं की वजह से मुझे रोते हुए मन से अपनी कोठरी छोड़कर भागना पड़ा था।

पर अब!

अब वे मुझे अपना 'बेटा' कहती हैं समझती हैं। अपना सबसे बड़ा हितु समझती हैं। अपनी बहू की बीमारी बढ़ने पर मेरे पास दौड़ी आयी और उसे मेरे साथ ग्लोरिया के यहाँ भेजने में भी उन्हें

कोई हिचक नहीं हुई। उस समय उन्होंने क्षण भरके लिए भी न सोचा कि मैं उनकी बहू को बुरी नजर से देख सकता हूँ। देखूँ या न देखूँ, पर जवानों को शक की निगाह से देखा ही जाता है।

छल्ला मिटा, फिर बना।

मोहनी!

मेरी मामी!

मेरी उम्र से सात साल छोटी।

अतृप्ति की जलन में शादी के पहले से अब तक जलती रही। जलती रही और चुप रही। चुप रही, और हिस्टीरिया की शिकार हो गई।

शादी के पहले उसके जीवन में एक सलोना-सा युवक आया। दोनों ने मिलकर अपनी दुनियाँ बनायी। मोहनी युवक की गोद में खोकर अपनी जिन्दगी काट देने का स्वप्न देखने लगी।

स्वप्न देखा। पर स्वप्न स्वप्न ही रहा। सत्य नहीं हो सका। दुनियाँ ने उसे अपने जीवन-धन की गोद से छीनकर ऐसे आदमी की गोद में फेंक दिया, जो न केवल बोड़म ही था, बल्कि उसके तन और मन में धधकती आगको भी बुझाने में असमर्थ था। उस आग को भी बुझाने में असमर्थ था। उस आग को बुझाने को कौन कहे, उसने और बढ़ा दी। भोजन की थाली सामने रहे और खाने को न मिले तो भूख बढ़ेगी ही। पति पास में लेटा रहे, और पत्नी का शरीर अछूता रहे, तो कामनायें, लालसायें विकराल रूप धारण करेंगी हीं।

नतीजा यह हुआ कि जब उसके तन और मन की जलन बढ़ जाती तो उसे फिट आ जाता। वह बेहोश हो जाती। वह चुपचाप जल रही थी, घुल रही थी, मर रही थी। बस चुपचाप। अन्दर ही अन्दर हिन्दू नारी जो थी जिन्हें केवल मरना आता है जीना नहीं, मारना आता है जिलाना नहीं।

पर ग्लोरियाने उसे मरने से बचा लिया। उसके इलाज ने उसकी भूखी कामनाओं और लालसाओं की भूख को मिटाकर शांत कर दिया। अब वह जलती नहीं, घुलती नहीं, घुल-घुलकर मरती नहीं। जी रही है। मुस्कुरा रही है। हँस रही है। अब वह भूखी नहीं रहेगी। कभी नहीं। भूख मिटाना उसे आ गया है।

और उसकी बुढ़िया सास समझती है कि ग्लोरिया की दवा ने उसे अच्छा कर दिया है।

ग्लोरिया की दवा!

और व्यंग भरी मुस्कान उसके होठों पर फैल गयी।

वह और ग्लोरिया खूब समझते हैं कि किसकी और किस दवा ने मोहिनी को अच्छा किया है।

छल्ला बना और मिटा। मिटा और बना!

ग्लोरिया!

ऐंग्लो इण्डियन नर्स!

मोहिनी की तरह अतृप्त।

लेकिन वह नर्स पहले है, नारी बाद में।

मोहिनी की अतृप्ति उसने अपने 'प्रयोग' से मिटा दी, पर अपनी नहीं मिटा सकती, नहीं मिटा सकी।

जहाँ अपना प्रश्न आता है उसका नारीत्व जाग पड़ता है और तब उसकी जबान बन्द हो जाती है। चाहकर भी वह कुछ कह नहीं पाती। कह नहीं पाती, इसलिए असमर्थ है। असमर्थ है, इसलिए अतृप्त है।

मोहिनी के हिस्टीरिया के कारण के जड़ में पहुँचते ही उसने वह 'दवा' बतायी, जिससे वह उसका इलाज करना चाहती थी।

सुनकर मैं थोड़ा-सा चौंका। थोड़ी-सी आवाज भी आयी बोला—"यह तुम क्या कह रही हो ग्लोरिया। वह मेरी मामी है।"

ग्लोरिया मुस्कुरायी और मुस्कराते हुए बोली—"इसीलिए तो मैं तुमसे कह रही हूं ..."

"लेकिन ..."

और जब नर्स की आवाज में ग्लोरिया बोल उठी—"लेकिन क्या? यदि तुम्हारे बच्चे को भयानक फोड़ा निकल आवे तथा जिससे उसकी जान खतरे में पड़ जाये, तो क्या तुम उसका आपरेशन इसलिए नहीं करोगे कि वह तुम्हारा बच्चा है? आपरेशन न करके क्या तुम उसकी जान खतरे में डाल दोगे?"

मैं कुछ बोल नहीं सका।

जीतने पर जैसे औरतें मुस्कुराती हैं, वैसे ही वह भी मुस्कुरायी। मुस्कुरा कर बोली—"इस समय मोहिनी ऐसी स्थिति में पहुँच चुकी है कि उसे बचाना या मारना तुम्हारे हाथ में है। मैं तो नर्स हूं। आपरेशन करने का सारा प्रबन्ध मैंने कर दिया है। अब आपरेशन करो या न करो। तुम्हारी मरजी!"

मुझसे कुछ बोला नहीं गया। चुपचाप खड़ा रहा।

ग्लोरिया भी कई क्षणों तक चुपचाप खड़ी रही रही, कुछ सोचती-सी। फिर सहसा ही मुझे जोरों का धक्का दिया। उस अचानक धक्के को मैं सँभाल न सका। लड़खड़ा कर उस कमरे के अन्दर आ गया, जिसमें मोहिनी थी। ग्लोरिया ने मुझे केवल धक्का ही नहीं दिया, बल्कि मेरे अन्दर होते ही बाहर से दरवाजा भी बन्द कर लिया।

और जब उसने दरवाजा खोला तो उसके रोगी का 'आपरेशन' हो चुका था, उसके प्राण सकट में नहीं रह गये थे।

ग्लोरिया मेरी ओर मुस्कुराती नजरों से देख रही थी..."

मोहन ग्लोरिया की उस नजर को नहीं देख सका, इसलिए उसने सिर को जरा-सा झटका दिया, और उसकी आकृति उसकी आँखों के आगे से हट गयी।

सिगरेट का धुआँ मुँह से निकाल कर मोहन ने खिड़की के बाहर आसमान की ओर देखा। वह नहीं समझ पा रहा है कि ग्लोरिया की वजह से जो हुआ, वह ठीक था या नहीं, उसे वैसा करना चाहिए था या नहीं।

और फिर अब उसके सोचने या समझने से होता ही क्या है! अच्छा हुआ या बुरा अब तो हो ही गया। उसे इस सम्बन्ध में सोचना ही नहीं चाहिए। सोचता तो तब, जब उसके मन में पश्चाताप या ग्लानि होती। जब ऐसी कोई बात नहीं है, तब वह सोचे क्यों, सोच-सोचकर परेशान क्यों हो?

आसमान से उसकी आँखें उतर कर शैल की खिड़की पर आ लगीं, उस खिड़की पर जिसे उसने एक ही प्रहार में तोड़ दिया था, लेकिन शैल रामनाथ की बहन शैल—ने दुनियाँ की नजरों में पड़ने से पहले ही उसकी मरम्मत करा ली।

शैल!

पहली ही नजर मिलते मेरा दिल दीवाना हो गया। उसके दामन से लिपटने के लिए आतुर अपने दीवाने दिल को रोकने की बहुत कोशिश की, पर रोक न सका। यहाँ भी मेरी हार हुई। जिन्दगी भर हारते रहने वाला कभी किसी से जीत भी सका है?

लेकिन मेरी यह हार अब तक की सभी हारों से बिल्कुल निराली थी। निराली ही नहीं मधुर भी। इसके पहले की हारों ने मेरी जिन्दगी को नर्क बना दिया था, पर इस हार ने उस नर्क को स्वर्ग में बदल दिया था।

अब मेरी जिन्दगी भी ऐसी है, जिसे मैं जिन्दगी कह सकता हूँ। कोई चिन्ता नहीं। कोई परेशानी नहीं।

शैल ने उसे जीवन के सभी सुख मुझे तो दिये ही, यहूदी प्रकाशकों के चंगुल से भी मुक्त कर दिया। आज उसने मुझे इस स्थिति में ला दिया कि मैं अपनी पुस्तकें अब स्वयं प्रकाशित कर सकता हूँ।

सुना था, पढ़ा था, लिखा था अनुभव किया था कि नारी पुरुष को हमेशा छलती है, छलती है और मार डालती है पर यह शैल तो उन सबों से बिल्कुल अलग निकली। मुझे छलने या लूटने की बात तो दूर, वह खुद ही मुझ पर लुटी जा रही है।

और मैं .

किसी ने आकर सहसा ही मोहन की आँखें बन्द कर लीं। शैल की सलोनी आकृति उन हथेलियों के बीच पिस कर रह गई।

पर दूसरे ही क्षण वह समझ गया कि शैल की आकृति को अपनी हथेलियों के बीच दबा कर मिटाने वाली और कोई नहीं, स्वयं शैल है।

वह मुस्कुरा उठा।

बोला—"अब छोड़ दो। पहचान गया.. !"

"ऊँ हूँ ! पहले नाम ··?"

"मेरी शैल. !"

और उसकी आँखें आजाद हो गईं। और जब उसने अपना सिर घुमाकर मुस्कुराती शैलको देखा, तो वह बोल उठी—क्या सोच रहे थे ?"

वह बोला—"अरे यूँ ही ··!"

"झूठे हो। यूँ ही सोचने में कहीं में कोई इतना खो जाता है " शैल बोली।

"तो सच-सच बता दूँ ?" मोहन ने मुस्कुरा कर कहा।

"समझ लो कि मैं झूठ आसानी से पकड़ लेती हूँ !" शैल ने कहा।

"तो सुनो, मैं तुम्हारे ही बारे में सोच रहा था !" मोहन ने कहा।

"यह भी झूठ। भला तुम मेरे बारे में क्यों सोचने लगे ?" शैल ने कहा।

"तो मेरे कोई और भी बैठा है, जिसके बारे में सोचूँगा ?" मोहन ने कहा।

"तुम पुरुषों का कोई ठीक है। जहाँ किसी सुन्दर युवती को देखा कि फिसल पड़े, आहें भरने लगे...."—मुस्कुरा कर शैल ने कहा।

"लगता है कि यूनीवर्सिटी में लड़कों ने तुम्हें बहुत तग किया था " मोहन ने कहा—"क्योंकि ऐसी बातें तो वही कर सकता है जिस पर पड़ी हो.. "

"तुम भी तो यूनीवर्सिटी में रहे हो। क्या यह बात सच नहीं है कि यूनीवर्सिटी के लड़के लड़कियों को भूखी निगाहों से देखते हैं ?" शैल ने पूछा।

"कहती तो सच हो। पर क्या यह सच नहीं है लड़कियाँ उन लड़कों की निगाहों को भूखी बना कर अपनी ओर देखने को विवश कर देती हैं ?" मोहन ने कहा।

"सच सच बताना, किसी ने तुम्हारी भी निगाहों को भूखी बना दिया था ? ·" मुस्कुरा कर शैल ने पूछा।

मोहन भी मुस्कुरा पड़ा। बोला—"यूनीवर्सिटी में लोग मुझे 'बोदा' गावदी, मीठा, और न जाने क्या क्या कहते थे। और इन शब्दों का अर्थ तो तुम जानती ही होगी ?"

"जानती तो हूँ, पर साथ ही यह भी जानती हूँ कि अगर लोग सच-मुच ऐसा कहते थे तो गलत कहते थे..." शैल ने कहा।

"गलत ? तो तुम्हें विश्वास नहीं है ?·" सस्मित स्वर में मोहन बोल उठा।

"विश्वास कैसे करूँ, जब मैं स्वयं तुम्हारी निगाहों को देख चुकी हूँ। जिस दिन मैं पहले पहल यहाँ आई थी, उन दिन जिस निगाहों से तुम मुझे देख रहे थे, उसे भूल गए क्या ? तुम्हारी भूखी निगाहों से ही चिढ़ कर मैंने उस दिन खिड़की बन्द कर ली थी और ..."

शैल की बात बीच ही में काट कर मोहन ने कहा—"मेरी निगाहें भूखी थीं इसमें सन्देह नहीं, पर उसकी जिम्मेदार भी तुम ही हो। रहा

तुम्हारे रूप और यौवन का असर तो उस दिन उसे भी तुमने देख लिया। तुम बुलाती रही पर मैंने तुम्हारी ओर देखा भी नहीं .."

मुस्कुरा कर शैलने कहा—'यह तो तुम्हारी चाल थी मुझे रोब में लाने के लिए "

मोहन हंस पड़ा! बोला—'तो अब चली जाओ। मत आओ रोबमें! "

शैलने कहा—'आसमान से टूटा तारा क्या फिर कभी आसमान पर जा सकता है? तरकस से निकला हुआ तीर क्या तरकस में फिर वापस आता है? और "

मोहन बीच ही में बोल उठा—'और क्या पहलू से निकला हुआ दिल फिर पहलू में वापस आता है? जी नहीं, कभी नहीं!"

कह, मोहन हँस पड़ा।

और शैल लजा उठी।

शैल की ठुड्डी पकड़ कर मोहन ने कहा—'गलती करने पर लोग लजाते ही हैं। तो क्या दिल लेने-देनेकी गलती तुमने भी कर दी है?"

लाज के मारे शैल से कुछ बोला नहीं गया। उसने अपना चेहरा मोहन के सीने में छिपा लिया।

मोहन की मुस्कुराती हुई उँगलियाँ शैलके नागिन जैसे केशों से खेलने लगीं।

शैल चुप थी, इसलिए मोहन भी चुप था। पर उसे यह चुप्पी थोड़ी ही देर बाद खलने लगी। वह शैल के पास चुप नहीं बैठना चाहता था। वह चाहता था जब शैल उसके पास रहे, उससे बातें करता रहे, मीठी-मीठी, प्यारी-प्यारी।

बात का रुख उस ओर बदलने के लिए जिधर शैल को बोलते-बोलते लाज न आये और लजाकर वह चुप न हो जाये मोहन बोला—"कैसी वकालत चल रही है तुम्हारी?'

संगीत सम्मेलन में यह गर्दभ-स्वर कहाँ से ! शैल ने अपनी आँखें ऊपर उठाकर कहा—"इस समय तुम्हें वकालत की बात कहाँ से सूझी !. . बेवक्त की शहनाई बजानी तुम लोगों को खूब आती है।"

'तो क्या तुम "

बीच ही उसकी बात काट कर शैल बोली—'मेरी बात तुम मत करो, अपनी बोलो। पुस्तक छपने में कितनी देर है ? "

"तुम्हें मेरी ओर देखने की फुर्सत हो तब न पता रहे कि मैंने कितना काम किया है ? ."

"अच्छा तो आजकल तुम कामकाजी आदमी हो गये हो ! " शैल ने मुस्कुरा कर कहा—"कितना काम किया तुमने ! जरा मैं भी सुनूं ! "

"मेरे काम की बात सुनना चाहती हो ? ता सुनो ! पुस्तक छपकर तैयार हो गयी है। दफ्तरी थोड़ी देर में सभी किताबें यहाँ पहुँचा जायगा. " मोहन ने कहा।

"बड़ी खुशी की बात है. " शैलने कहा—'कल से उसे डिस्पैच कराना शुरू कर दो और अपने दूसरे उपन्यास में भी हाथ लगा दो, ताकि इस महीने के अन्त तक वह भी छपकर तैयार हो जाय। "

"जो आज्ञा !. " कह मोहन मुस्कुरा उठा।

पर शैल मुस्कुरायी नहीं। गम्भीर स्वर में बोली—"कभी-कभी बेकार बातें क्यों कह बैठते हो ?"

क्षण भर के लिए मोहन नहीं समझ सका कि उसे कौन-सी ऐसी बात कह दी है, जिससे शैल को ठेस सी लग गयी, पर दूसरे क्षण जब उसकी समझ मे आया तो वह मुस्कुरा उठा—"मैंने ऐसी कोई बात तो नहीं कही शैल। तुम्हारी ही वजह से मैंने अपनी जिन्दगी में सुख को देखा और जाना है, इस योग्य हुआ हूँ कि अपनी कला और आत्मा को

यहूदियों के हाथ न बेचता फिरूँ ! इसलिए तुम्हारी बातों को आज्ञा स्वरूप ही मुझे समझना चाहिए ...''

"अगर मैंने कुछ किया भी है तो केवल तुम्हें पाने के लिए। लेकिन तुम्हारी बातों से कभी कभी ऐसा लगता है कि तुम्हें मैं जिस रूप में पाना चाहती हूँ; अभी पा नहीं पायी हूँ और शायद पा भी नहीं सकूँगी ...''—शैल वैसी गंभीर बनी रही।

"यह तुम्हारे मन का भ्रम है, शैल ! मैं ''

मोहन की बात बीच ही में काट कर शैल बोली—"नहीं मोहन, नहीं। अभी-अभी 'आज्ञा' वाली बात कह कर फिर तुमने यह बता दिया है कि मैं तुम्हें अब तक नहीं पा सकी हूँ। तुम ...''

मोहन ने जोर देकर कहा—"वह तो मैंने केवल परिहास में कहा था, शैल। और अब तुम्हारी कसम खा कर कहता हूँ कि जिन्दगी भर कभी ऐसा परिहास नहीं करूँगा। तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास करना चाहिए ''

शैल कुछ बोली नहीं। चुपचाप अपनी भरी-भरी आँखें मोहन की ओर उठा दीं।

मोहन ने उसके केशों पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—"पगली !''

शैल जरा-सी मुस्कुरायी।

"ऐसी बातें नहीं सोचा करते '' मोहन ने कहा—"और अब कभी भी, भूल कर भी, ऐसी बात मत सोचना। नहीं तो मैं नाराज हो जाऊँगी ..''

उसके कहने के अन्दाज पर शैल अपनी हँसी नहीं रोक सकी।

मोहन भी हँस पड़ा।

"दफ्तरी के यहाँ से पुस्तकें आते ही मुझे बुला लेना ...'' शैल ने कहा।

"क्या ? ..." मोहन ने कहा—"क्या रिक्शे पर से किताबें उतारने का विचार है ?"

"क्या इतने कमजोर हो गए हो तुम कि किताबें उतरवाने के लिए मेरी सहायता लोगे ?" शैल ने कहा।

"मेरी ताकत का आज तो नहीं किसी दिन तुम्हें अन्दाज लग ही जायेगा, इसलिए इस सम्बन्ध में इस समय कुछ कहना व्यर्थ है..." मोहन ने मुस्कुरा कर कहा—"हाँ, बताओ क्या काम है ?"

"कुछ किताबें लेनी थीं !..." शैल ने कहा पर जब दूसरे क्षण उसे मोहन का परिहास समझ में आया तो वह लजाए स्वर से बोल उठी—"बड़े बेशर्म होते जा रहे हो आजकल..."

मोहन ने वैसे ही मुस्कुराते हुए कहा—"इसमें भला बेशर्मी की बात क्या है। तुम्हीं ने तो कहा कि क्या मुझमें ताकत नहीं रह गई है, तब न मैंने कहा कि इसका अन्दाज तो तुम्हें अभी नहीं किसी और समय लग जायेगा, जब तुम चाहोगी ?"

"अच्छा, अब चुप भी रहो। मान लिया तुम भीमसेन हो। बस !...." लजाए ही लजाए शैल बोली।

मोहन मुस्कुरा कर चुप हो रहा।

शैल भी लजायी लजायी-सी चुप रही।

दो तीन क्षणों के बाद मोहन बोला—"कितनी प्रतियाँ तुम्हें चाहिएँ ?"

"यही, दस बारह !..."

तो दफ्तरी के यहाँ से किताबों के आने की राह देखने की क्या जरूरत ?...." मोहन ने कहा—"मैं तुम्हें अभी देता हूँ !..."

"कुछ प्रतियाँ ले आए हो क्या ?" शैल ने पूछा।

"हाँ, सवा सौ ले आया था। पुस्तक विक्रेताओं को पचास प्रतियाँ परसों दे आया था। वे कल तक समाप्त हो गईं। आज सुबह पचास

प्रतियाँ वे फिर ले गए हैं " मोहन ने कहा—"अब पचीस बच रही हैं। जितनी चाहो ले लो "

"ज्यादा लेकर क्या करूँगी। मुझे बारह प्रतियाँ दे दो " शैल ने कहा।

"अभी लो "—कह, मोहन उठकर मेज पर से बारह प्रतियाँ उठा लाया।

सुन्दर जिल्द में बँधी एक प्रति उसे पहले देकर बोला—"यह तुम्हारी अपनी प्रति है "

"मेरी अपनी प्रति ! "—मुस्कुरा कर शैल ने ऐसे कहा, जैसे वह इसका मतलब समझना चाहती हो।

"हाँ, यह केवल तुम्हारे लिए है. ." मोहन ने कहा।

उत्सुकतावश उसे शैल ने सँभालकर खोला। पहले ही पृष्ठ पर सुन्दर अक्षरों में लिखा था—

शैल को

जो मेरी जिन्दगी है।

—मोहन

देखकर शैल को लगा जैसे उसे पर लग गए हैं, और वह ऊपर, बहुत ऊपर, स्वर्ग लोक में उड़ी जा रही है, जहाँ प्यार के शराब की बारिश होती है, जिसके नशे में लोग हर समय मस्त रहते हैं दुःख, चिन्ता, पीड़ा, की हलकी-सी झिलमिलाती-सी भी लकीर नहीं।

स्वप्न से भींगी-भींगी अपनी आँखें उसने ऊपर उठायीं और मोहन को देखा, जिसकी वह जिन्दगी बन चुकी है, जो उसे उन्मीलित नेत्रों से देख रहा था।

पलकों पर लाज का बोझ पड़ा और तब उसके नीचे तैरते स्वप्न को दब जाना पड़ा।

"शैल !"

"मोहन !"

शैल की पलकें जरा-सी ऊपर उठीं।

मोहन का हाथ अनायास ही शैल की ओर बढ़ा और दूसरे ही क्षण शैल उन भुजाओं के बीच सिमट-सी गई।

बंधनों में जब वह बँधी तो बँधी ही रही, शायद उसी तरह हमेशा हमेशा बँधी रहती, यदि सड़क पर से किसी गुजरती कार की हार्न न सुनाई पड़ती।

बंधन तो टूट गया, पर लाज का बंधन नहीं। वह वैसा ही रहा। शैल उसी तरह लजाई-लजाई-सी सिमटी रही।

लाज के उस बंधन से भी उसे मुक्ति दिलाने के लिए मोहन ने कहा—"और ये ग्यारह प्रतियाँ दूसरों के लिए है"

"ओह, अच्छा !"

क्षण भर की खामोशी के बाद मोहन ने कहा—"इस बार मुझे हवा का रुख कुछ बदला-बदला-सा नजर आ रहा है !"

शैल ने अपनी आँखें ऊपर उठायीं और पूछा—"कैसा ? मैं समझी नहीं !"

"एक दो दिन के अन्दर दो रुपए मूल्य वाली पचास प्रतियो का बिक जाना और तीस का आर्डर बुक हो जाना, मुझे कुछ सन्देह में डाल रहा।"

"सन्देह में ? कैसा सन्देह ?" शैल ने पूछा।

देश का पूँजीवादी वर्ग मुझसे बहुत चिढ़ा हुआ है। आए दिन धमकियों से भरे पत्र मिलते रहते हैं" मोहन ने कहा—"इस बार किसी प्रकाशक की कैंची चलने का भय नहीं था, इसलिए मैंने उस वर्ग का पर्दाफाश करने में अपने कलम की सारी ताकत लगा दी है।"

शैल हँस पड़ी। बोली—"पागल हो। कोई कर ही क्या लेगा और

अगर कोई सामने आया, तो मैं देख लूँगी। तुम परेशान काहे को होते हो?"

"मैं इसलिए परेशान नहीं हो रहा हूँ 'कि प्रेस ऐक्ट पास हो जाने से पूँजीवादी वर्ग की शक्ति बढ़ गई है, इसलिए नहीं कि मुझ पर मुकदमा चलेगा और मुझे सजा हो जायेगी "—मोहन ने कहा—'बल्कि इसलिए कि उस समय हमारी प्रगति में बाधा पड़ेगी, क्योंकि जिस प्रेस में यह उपन्यास छपा है, उसके मालिक पर भी यह मुकदमा चलेगा, उसकी जमानत जब्त कर ली जायेगी और तब कोई प्रेस वाला हमारी चीजें छापने का साहस न कर सकेगा "

"न करे हम अपना प्रेस खड़ा कर लेंगे। आज अगले उपन्यास के कागज के लिए एक हजार रुपया मैंने बैंक से मँगा लिया है। एक दो दिन में प्रेस का भी प्रबन्ध हो जायेगा "—शैल ने उसे आश्वासन दिया—"तुम निश्चिन्त होकर लिखो और पूरी आजादी से लिखो। बाक़ी चीज मैं देख लूँगी "

मोहन ने उसकी ओर आश्वस्त दृष्टि से देखा। वह जानता है कि शैल जो कहती है, उसे करती है। वह उन नारियों में नहीं है जो कहती तो कुछ हैं, करती कुछ हैं, प्रेम करेंगी किसी और से और विवाह किसी और से।

शैल ने कहा—"और तुम इतनी सी ही बात में परेशान हो गए, आश्चर्य है। मुझे तो तुमने सिखाया है कि संघर्ष का ही नाम जिन्दगी है और आज तुम सघर्ष से ही बचना चाहते हो!."

मोहन कुछ बोल नहीं सका, क्योंकि शैल ठीक ही कह रही थी। अब वह संघर्ष से बचना चाहता है, इसलिए नहीं कि संघर्ष को अब वह जिन्दगी नहीं मानता। अब भी मानता है, जानता है, कहता है और लिखता है। लेकिन शैल की वजह से उसकी जिन्दगी में जो सुख आ गया है, उस सुख से उसे जो मोह हो गया है, उसे वह छोड़ना नहीं चाहता।

उसकी जिन्दगी में आकर शैल ने मोह-माया की जो चारदीवारी उसके चारों ओर खड़ी कर दी है, वह उसे इतना प्रिय लगने लगा है, कि उसे छोड़ कर वह बाहर नहीं जाना चाहता, उसी चारदीवारी के अन्दर अपनी जिन्दगी काट देना चाहता है।

समाज, व्यवस्था के मजबूत बन्धनों को तोड़ देने की क्षमता रखने वाला मोहन आज इतना अशक्त हो गया है कि मोह-माया के कच्चे धागे के बधनों को भी नहीं तोड़ सकता।

उसे चुप देखकर शैल भी चुप हो रही। चुप हो रही और कुछ सोचती रही।

सोचते-सोचते उसे एक भूली बात याद आ गई और सहसा ही वह फिर बोल उठी—"एक बात तो कहना मैं भूल गई "

मोहन ने प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा।

"कल शाम को मेरी सहेली की सालगिरह है" शैल ने कहा— "तुम्हें भी मेरे साथ चलना होगा! "

"सालगिरह तुम्हारी सहेली की है, वहाँ मेरा क्या काम? " मोहन ने कहा—"और फिर मैं किसी अपरिचित के यहाँ जाना पसन्द नहीं करता...."

"तुम वहाँ अपने मन से तो जा नहीं रहे हो. " शैल ने कहा— "तुम्हें मैं लिवा चल रही हूं .. "

"न, शैल! मैं न जा सकूँगा। मैं अमीरों की सोसाइटी में नहीं जाना चाहता, क्योंकि उन्हें देखकर मैं अपने दिल और दिमाग का संतुलन खो बैठता हूँ—" मोहन ने कहा—"हो सकता है कि मैं कुछ ऐसी वैसी बात कह या कर बैठूं तो व्यर्थ में तुम्हारा भी अपमान हो जाय .. "

शैल ने मुस्करा कर कहा—"पर मुझ देखकर तो तुम्हारे दिल और दिमाग का सतुलन नहीं बिगड़ा था।"

"औरतें पिछली बातें बहुत जल्दी भूल जाती हैं—" मोहन ने कहा—"नहीं तो तुम उस रातवाली घटना न भूल जातीं, जब मैं खिड़की तोड़कर तुम्हारे कमरे में तुम्हारी चीख सुनकर घुसा था।"

अपने पर आ गई बात को टालने के लिए शैल ने कहा—"पर अब मुझे तुम पर भरोसा है, इसलिए मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि तुमसे ऐसी वैसी कोई हरकत नहीं होगी।"

मोहन कुछ बोलने ही जा रहा था कि शैल ने उसे रोक दिया—"अब और कुछ कहने की जरूरत नहीं है। तुम्हें कल मेरे साथ चलना पड़ेगा, यह मेरा आखिरी फैसला है और इसमें अब तनिक भी परिवर्तन नहीं हो सकता।"

मोहन चुप हो गया। कुछ कहने सुनने की गुञ्जाइश रह ही नहीं गई थी। औरतें जिस बात पर अड़ जाती हैं, उसे कर व कराकर तभी दम लेती हैं।

शैल मुस्कुरा उठी।

पुरुष से जीतने पर नारी मुस्कुराती ही है।

११

सुबोध ने चश्में में से अपने चारों ओर बैठी भीड़ की ओर देखा, और सिगार मुँह से निकाल, छत की ओर धुँआ छोड़कर लम्बी साँस ली।

"काम तो बड़ा मुश्किल है। फिर भी मैं कोशिश करूँगा" सुबोध ने उन्हें आश्वासन दिया।

रामनाथ ने अपना सर जरा-सा आगे बढ़ाकर कहा—"कोशिश ही नहीं करनी है मिस्टर सुबोध, आपको इस कार्य को करना ही होगा। उसने हम पर जो करारी चोट की है, उसका जवाब उसे मिलना ही चाहिए, वरना हमारा अस्तित्व देखते-देखते ही समाप्त हो जायेगा।"

सुबोध ने अपना सिर गभीरता से हिलाया। सिर हिलाया और बोले—"मैं पिछले दो दिनों से इसी बारे में सोच रहा हूँ। उसने केवल आप ही लोगों का अपमान नहीं किया है, बल्कि मेरे जैसे सभ्य लोगों पर भी थूकने की कोशिश की है"

रामनाथ के बगल में बैठे हुए सेठजी अपनी चाँद पर हाथ फेरते हुए बोले—"बैरिस्टर साहब! यदि इसे इसी तरह छोड़ दिया गया, तो वह और विष उगलेगा। कम्यूनिस्टों और सोशलिस्टों ने आग तो लगा ही रक्खी है, इसकी किताबें उस आग में घी का काम करेंगी और तब हम इन शोलों से अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे"

सुबोध चुपचाप सिगार पीते रहे।

रामनाथ ने कहा—"प्रान्त के मुख्य मंत्री और गृह मंत्री के पास तारों का अम्बार अब तक लग गया होगा। हमारी भेजी हुई पुस्तकें

उन्हें मिल गई होंगी, और आशा है कि आज कल में ही सरकार कोई क़दम उठायेगी। ."

क्षण भर साँस लेकर रामनाथ बोला—"हो सकता है कि सरकार इस दिशा में शीघ्र ही कोई निश्चित कदम उठानेमें हिचके या विलम्ब करे। इसलिए हमारा एक प्रतिनिधि-मंडल आजकल में यदि पहुँच जाता है, तो सरकार को हमारी बात माननी ही पड़ेगी।"

"हमारी भी यही राय है बैरिस्टर साहेब"—एक ने कहा—"और आप उस प्रतिनिधि-मडल के नेता होकर जाँय. "

"मैं! . यह आप लोग क्या कर रहे हैं?" सुबोध फन्दा अपने ही ऊपर आते देख हिचकिचाए।

"बगैर आपके गए काम होना मुश्किल है। हो सकता है कोई कानूनी दिक्कत पड़े। उस समय आप उन लोगों को सहायता दे सकेंगे "—रामनाथ ने कहा।

"अगर मैं जाऊँगा भी तो आज नहीं, कल जा सकूँगा ." सुबोध ने कहा—"आज शाम को मनोरमा की बर्थ-डे पार्टी है न, इसलिए!"

"कोई बात नहीं। कल ही जाइए "—रामनाथ ने कहा—"हम लोग आज प्लेन में आप लोगोंके लिए सीटें रिज़र्व करा लेंगे...."

"ठीक है। जब आप लोग कह रहे हैं, तब तो मुझे चलना ही पड़ेगा " सुबोध ने उन लोगों पर अहसान लादते हुए कहा।

अब कुछ कहने के लिए नहीं रह गया, इसलिए सब चुप हो गए। चुप हो गए और एक दूसरे की ओर देखने लगे। देखने लगे और सोचने लगे कि आज सब अपनी पुरानी वैमनस्यता भूल कर एक जगह इकट्ठे हो गए हैं, जैसे सब एक ही परिवार के हों, सब की रंगों में एक ही माँ-बाप का खून बह रहा हो। उनकी दशा उस समय उन

जानवरों-सी थी, जो भीषण गर्मी के आतप मे व्याकुल होकर, सूखी नदी के कछार के, वृक्ष के नीचे अपनी प्राकृतिक दुश्मनी भूलकर इकट्ठे हो जाते हैं।

थोड़ी देर बाद खामोशी सबको खलने लगी। रामनाथ ने खामोशी तोड़ने के लिए कहा—"एक बात तो हम लोगों को माननी ही पड़ेगी। उसकी क़लम में जादू है। पढ़ते-पढ़ते मुझे खुद अपने ऊपर घृणा होने लगी और यह तबियत हुई कि अपनी हत्या अपनी ही हाथों कर डालूँ!"

रामनाथ के बगलवाले सेठ ने, जिन्होंने लड़ाई के जमाने में सरकारी ठेका लेकर करोड़ों रुपया बनाया था और अब काँग्रेसी नेता ही नहीं विधान-सभा के सदस्य भी हैं, कहा—"मेरी तो हालत आप ही जैसी हो गई थी। यहाँ तक कि पिछली दो रातों से डर की वजह से मैं सो नहीं पाया कि कहीं रात को सोते-सोते अपना गला न टीप लूँ!. "

सुबोध के बगल में बैठे हुए चमड़े के कारखाने के मालिक ने कहा—"जाने कम्बख्त को कैसे हमारी अन्दरूनी बातों का पता चल गया! हमारी एक एक पोल उसने खोलकर रख दी है.. "

उसके बगलवाले सेठ ने कहा—"एक बात मेरे दिमाग में अभी-अभी आयी है। अगर आप लोग उसे मान लें, तो साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे।"

रामनाथ और सुबोध के साथ-साथ सभी ने उसकी ओर देखा।

"हम तो यही चाहते हैं न कि जनता में हमारी पोलों का प्रचार न हो! उसे हम बड़ी आसानी से कर सकते हैं! "

"पर कैसे? कुछ बताइए भी तो!. " रामनाथ ने कहा।

"जितनी भी प्रतियाँ उपन्यास की छपी हों, हम उसे खरीद कर जलवाँ दें! हमारा काम हो जायेगा .." उसने कहा।

"पर उसे अपनी इस गुस्ताखी की सज़ा कहाँ मिली? ." रामनाथ

ने कहा—"हम तो चाहते हैं कि उसे ऐसी सज़ा मिले कि भविष्य में वह फिर ऐसी गुस्ताख़ी करने की सोचे भी न ."

"आप उस पर मुकदमा ही न चलाना चाहते हैं . ... . " उसने पूछा।

"मुक़दमा चलेगा और उसे सज़ा भी होगी,"—रामनाथ ने ऐसे कहा कि जैसे कानून बनाना और 'न्याय' करना उसके ही हाथों में हो।

"आप ग़लत सोचते हैं। इससे उसका 'लेखक' मर नहीं जायगा। बल्कि उसके विद्रोह की शक्ति और बढ़ जायेगी और तब तो जो होगा उसकी कल्पना से ही मेरा रोम-राम काँप जाता है " उसने कहा—"लेखक को सज़ा देकर नहीं मारा जा सकता। उसे तो मारने का सबसे सुन्दर तरीक़ा यही है कि उसकी रचनाओं को जनता तक पहुँचने ही न दिया जाय। विश्वास मानिए वह अपने आप मर जायेगा. "

"मैं इसे नहीं मानता ! मैं "

रामनाथ की बात को बीच ही में काटकर उसने कहा—"आप को मानना पड़ेगा, क्योंकि मैं जो कह रहा हूँ, वह सच कह रहा हूँ।. . माना कि हमारा ज़ोर सरकार पर है, उस ज़ोर की वजह से हम उसके उपन्यास को ज़ब्त कर लेंगे, उस पर नए प्रेस ऐक्ट के अन्तर्गत मुक़दमा चलवा कर उसको सजा भी करा देंगे ! पर हमारा जोर केवल सरकार तक ही सीमित है न ! जनता पर हमारा कोई ज़ोर नहीं, और न सरकार का। जिस दिन उसके उपन्यास पर प्रतिबन्ध लगेगा- जनता खोज-खोज कर उसके उपन्यास को पढ़ेगी। उस समय न हम कुछ कर सकते हैं और न सरकार से कुछ करा सकते हैं। और यदि उसे सजा हो गई तो वह जनता का बेताज का बादशाह हो जायेगा, और तब वह जो आग लगायेगा उसमें हम ही नहीं, हमारा नामो-निशान तक जल कर राख हो जायगा, जिसे आप चाहते, न कोई चाहता है !"

दो क्षण तक चुप रहने के बाद रामनाथ ने कहा—'आप का कहना

तो ठीक है, मैं मानता हूँ। लेकिन इस समय तक उसकी पुस्तकें मार्केट में पहुँच गई होंगी और धड़ल्ले से बिक भी रही होंगी। कैसे आप उन्हें अपने कब्जे में करेंगे ? ."

"यह सच है कि कुछ प्रतियाँ इस समय तक जनता के बीच पहुँच गई होंगी, साथ ही यह भी सच है कि उतने से हमारा कुछ बन-बिगड़ नहीं जायेगा...." उसने कहा—"हाँ यदि हम इसी तरह हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें, तो बस समझ लीजिए अनर्थ ही हो जायगा। वर्षों के कम्यूनिस्टों और सोशलिस्टों के प्रोपोगैण्डा ने जो नहीं किया था, वह उसका अकेला उपन्यास कर देगा।"

रामनाथ ने सुबोध की ओर मुँह करके कहा—"आप की क्या राय है?"

"सेठजी की बातों से मैं भी सहमत हूँ ." सुबोध ने कहा—"पर सरकार के पास भी तो हम इस मामले को भेज चुके हैं। उस सम्बन्ध में क्या होगा !"

"उसे जो कुछ करना होगा, वह करेगी। इस समय हमें जो कुछ करना है, वह करना चाहिए "—उसने कहा।

"तो ठीक है। कल ही हमारा कोई आदमी उसके पास किसी बड़े शहर का पुस्तक-विक्रेता बन कर जाय और उसके पास जितनी प्रतियाँ बची हों, वह खरीद ले"—रामनाथ ने कहा—"और वही किसी ढंग से इस बात का भी पता लगा ले कि किस-किस शहर में उसने प्रतियाँ भेजी है, ताकि वहाँ से भी उनको खरीद लिया जाय !"

"हाँ, यह ठीक रहेगा ! " सुबोध ने कहा।

सब की ओर देखकर रामनाथ ने धीरे से कहा—"साले ने ऐसा लिखा है, जैसे उसे किसी का डर ही न हो !..

"साले ने हमारे घर को-वेश्यालय और हमारी बहू-बेटियों को वेश्या बना दिया...."—एक सेठ ने कहा।

"वह भी ऐसे नहीं कि तीन सौ पृष्ठ के उपन्यास में एकाध लाइन ही लिखकर छोड़ दिया हो..." रामनाथ ने कहा—"पूरे सत्तर पृष्ठ में उसने इसी को सिद्ध करने के लिए लिखा है।"

"सिद्ध करने की चेष्टा ही नहीं की है, बल्कि सिद्ध भी कर दिया है.." सुबोध ने कहा—"और वह भी इतने जोरदार ढंग से कि अपने घर की सारी औरतों को जलती आग में फूँक देने का जी हो जाता है!"

"इतना ही नहीं उस कम्बख्त ने यह भी लिखा है कि दुनियाँ की सारी फसादों, गरीबी, भुखमरी, बेकारी के जिम्मेदार हम ही हैं। उसने नारा बुलन्द किया है कि हमारी दुनियाँ में आग लगा दी जाय, हमारा विनाश कर दिया जाय "—रामनाथ ने कहा—"और उसका यह नारा गान्धी के 'करो या मरो' के नारे से कहीं अधिक पुरजोश है। उसमें इतनी तपिस है कि पढ़ते-पढ़ते ऐसा महसूस होने लगता है कि सचमुच हमारे खिलाफ गरीबों, भुखमरों और बेकारों ने क्राति कर दी है, हमारी दुनियाँ में आग लगा दी है और हमें जीवित ही उस आग में फेंक दिया।"

कहते-कहते रामनाथ की दृष्टि ऊपर सीढ़ियों पर खड़ी मनोरमा पर पड़ी, जो खड़ी गौर से उन लोगों की बातें सुन रही थी।

रामनाथ उसे देखकर मुस्कुराया और बाँई आँख जरा सी दबाकर होठों पर चोरी से जीभ फेरी।

मनोरमा ने देखा। देखा और समझा। समझा और मुस्कुरायी। मुस्कुरायी और इशारा किया, आँखों से, रेलिंग से लिपटी पतली-पतली उँगलियोंसे।

"जो कुछ भी हो। इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वह गजब का लेखक है। जो कहता है शान से कहता है, अन्दाज से कहता है उसका एक-एक वाक्य जीते-जागते इन्सानों की तरह बोलता है,"—सुबोध ने कहा—"मैंने बहुत से विदेशी लेखकों की भी चीजें पढ़ी हैं, पर ऐसा

कमाल का लेखक आज तक नहीं देखा कि अपनी एक ही किताब से समाज के ढाँचे को बदल दे, भगवान जैसे सजीव और चिरंतन झूठ का हमेशा के लिए अन्त कर दे !"

मनोरमा की ओर देखते हुए रामनाथने कहा—"हाँ आ ..आप बिल्कुल . ठीक कहते . हैं "

चश्मे के अन्दर से झाँक कर सुबोध ने रामनाथ की आँखों को और उसी की आँखों के सहारे सीढ़ी पर खड़ी मनोरमा को देखा।

देखा और बोल उठे—"कौन, मनोरमा ? ओह, माई स्वीट डाटर ? आओ,आओ न बेटी मनो ! देखो, कौन-कौन लोग आए हैं, अपने यहाँ !"

सब की निगाहें मनोरमा पर जम गईं, जैसे मनोरमा बैरिस्टर सुबोध की लड़की नहीं, कोठे पर खड़ी सड़क पर अपने ग्राहकों को इशारे से अपने पास बुलानेवाली कोई वेश्या है !

"नो डैडी, थैन्क्स !"—कह, मनोरमा ऊपर चली गई। ऊपर जाते समय रामनाथ को आने के लिए इशारा भी करती गई।

सुबोध और रामनाथ को छोड़कर सभी के मुँहों में पानी आकर लौट गया।

"एक मिनट के लिए माफ कीजिएगा ."—कह रामनाथ उठ खड़ा हुआ और बिना किसी की ओर देखे ही सीढ़ियों पर चढ़ने लगा।

सबने हसरत भरी नजर से उसे देखा। कुछ को जलन भी हुई। कुछ को अपनी भूली-बिसरी जवानी की याद ने तड़पा दिया और कुछ की तबियत तो हुई कि दौड़कर सीढ़ियों पर जाकर रामनाथको नीचे ढकेल कर मनोरमा के कमरे में पहुँच जाय।

पर कोई उठा नहीं। केवल मन में सोचकर रह गए !

अपने कमरे के दरवाजे पर पहुँच कर मनोरमा ने जरा-सा सिर

घुमाकर सीढ़ियों पर से आते हुए रामनाथ को देखा। देखा और मुस्कुरा कर अन्दर जाकर कोच पर तिरछे होकर लेट गई।

कमरे के दरवाजे पर क्षण भर को रुक कर उसने देखा। कोच पर पड़ी मनोरमा के हिलते बालों को देखकर वह मुस्कुरा उठा और दबे पाँवों से कोच के पीछे जाकर खड़ा हो गया।

मनोरमा जान गई कि रामनाथ अन्दर आकर उसके पीछे खड़ा हो गया है। लेकिन कुछ बोली नहीं। चुपचाप लेटी रही।

"क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ···?" रामनाथ ने पूछा।

और मनोरमा ने सिर उठाकर उसे ऐसे देखा, जैसे रामनाथ के आने का उसे अभी-अभी पता चला है। कुछ बोली नहीं, केवल जरा-सा मुस्कुरा दी और उठकर बैठ गई।

रामनाथ कोच पर उसकी बगल में बैठ गया।

"किस विचारे की हत्या आप लोग करने वाले हैं?" मुस्कुरा कर मनोरमा ने पूछा।

"हत्या? हमें कसाई या जल्लाद समझ लिया है क्या तुमने?" रामनाथ ने कहा—"हम क्यों किसी की हत्या करने लगे!"

मनोरमा धीरे से हँसी। मन ही मन कहा कि कसाई या जल्लाद तो तुम लोगों से अच्छे ही होते हैं क्योंकि वे इन्सानियत की हत्या नहीं करते।

उसे हँसते देखकर रामनाथ को लगा कि मनोरमा उसकी बातों पर विश्वास नहीं कर रही है। बोला—"तुम तो ऐसे हँस रही हो, जैसे मैं गलत कह रहा हूँ!"

मनोरमा ने कहा—"हँसने का मतलब तुम गलत लगा रहे हो। आपको हत्यारा, कसाई या जल्लाद मैंने नहीं कहा है। अभी-अभी पापा के साथ आप लोग किसी लेखक पर मुकदमा चलाने, उसकी हत्या करा देने के सम्बन्ध में कह रहे थे न, उसी के बारे में मैंने पूछा था····"

"ओह, वह ! मनो, वह है भी उसी काबिल कि उसको जलती आग में जीवित झोंक दिया जाय।" रामनाथ ने कहा—"उसने ऐसा अपराध ही किया है।"

"साफ साफ कहो न, क्या बात है!" मनोरमा ने कहा।

"तुमने मोहन का नाम तो सुना ही होगा। अरे, वही जो कहानियाँ और उपन्यास लिखता है' रामनाथ ने कहा—"उसने अपने नये उपन्यास 'मरघट' में हम लोगों के सम्बन्ध में जो लिखा सो सो लिखा ही; हमारे घर की बहू-बेटियों को वेश्याओं से भी अधिक दुराचारिणी बना दिया है। उस बदमाश ने लिखा है कि अमीरों के लिए माँ, बेटी, बहन, का सम्बन्ध कोई महत्व नहीं रखता। जब तबियत हुई और जिससे तबियत हुई, अपनी लैंगिक भूख मिटा ली!"

मनोरमा मुस्कुरायी और बोली—"क्या गलत लिखा है उसने?"

रामनाथ ने धीरे से कहा—"गलत तो नहीं कहा है उसने, यह मैं मानता और जानता हूँ। पर उसे ऐसा हमारे सम्बन्ध में कुछ कहने का क्या अधिकार है? क्यों उसने ऐसी बातें लिखीं? · "

"इसलिए कि वे सच हैं और लेखक जिसे सच समझता है, उसे वह कहता है, लिखता है · "—मनोरमा ने कहा!

"हम उसकी ज़बान काट लेंगे, उसकी हत्या कर डालेंगे! ·· " रामनाथ ने आवेश में आकर कहा।

मनोरमा कुछ बोली नहीं, केवल मुस्कुरा दी, मानो कह रही हो कि "बकते हो। तुम्हारे जैसे लोग उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।"

दो क्षण तक चुप रहने के बाद रामनाथ ने कहा—"छोड़ो इन बातों को। हमें तुम्हें ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए।"

"फिर कैसी करनी चाहिए? दिल की मुहब्बत की या ."— मनोरमा ने अपनी अख़िरी बात को इशारे से बताया।

रामनाथ मुस्कुरा पड़ा। बोला—"इसीलिए तो आया हूँ कि · "

"आगे कहने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि मैं जानती हूँ कि किस लिये तुम या तुम्हारे जैसे लोग मेरे पास आते हैं! ..." मनोरमा ने मुस्कुरा कर कहा।

मनोरमा के बिल्कुल पास खिसक कर रामनाथ ने कहा—"तो फिर ..."

वह कुछ बोली नहीं। केवल तिरछी निगाहों से उसे देखा।

रामनाथ को लगा कि उसके मन के साथ-साथ उसका हाथ भी उसके क़ाबू के बाहर हो गया है। उसे केवल लगा ही नहीं, दूसरे ही क्षण उसे विश्वास करना पड़ा।

उसके हाथों ने मनोरमा की जवानी को अपने बंधन में बाँधकर बूढे सीने में छिपा लिया था।

सरिता की उमड़ती जवानी जिस समय बूढे सागर के सीने में प्रवेश करती है, उस समय सागर का सारा शरीर माघ के सवेरे गंगा किनारे बैठे हुए नंगे भिखारी की तरह काँपने लगता है।

रामनाथ का शरीर भी उसी तरह काँप रहा था।

२०

पदध्वनि सुनकर मोहन की आँखें उपन्यास के पन्नों पर से हटकर दरवाजे पर जा लगीं और जो लगीं तो लगी ही रहीं। हट ही नहीं सकीं।

उसे लगा कि राह भूलकर देवलोक की कोई अप्सरा उसके दरवाजे पर आ खड़ी हुई है, जिसकी आँखों में झील की गहराई है, जिसका वदन शबनम से भी अधिक मासूम और कोमल है और जिसके अंग-प्रत्यंग में झरनों की चचलता भरी हुई है, जिसका चेहरा देखकर चाँद को भी शर्मा जाना पड़ता होता जिसके गालों पर गुलाब ने अपना सारा सौन्दर्य बखेर दिया है।

मोहन को इस तरह अपनी ओर देखते हुए शैल लजा उठी। धीरे से बोली—"इस तरह मेरी ओर क्या देख रहे हो ? "

"देख रहा हूँ कि इतना सौन्दर्य तुमने अब तक कहाँ छिपा रक्खा था ? ..."—मोहन ने कहा।

मोहन के पास आकर शैल ने कहा—"आजकल तो तुम कविता भी करने लग गए हो !...."

"प्यार की झील में डुबकियाँ लगाने वाला ही कवि होता है " मोहन ने कहा—"गलत नहीं कह रहा हूँ, इसका सुबूत स्वयं तुम दे सकती हो !"

शैल मुस्कुरायी बोली—"यह अच्छा रहा। हमीं तुम पर आरोप लगायें और हमीं तुम्हारे लिए गवाही भी दें।"

"तो क्या हुआ .."

मोहन को बीच में ही रोक कर शैल ने कहा—"बेकार की बात छोड़ो ! पार्टी में चलने के लिए तैयार हो जाओ ।"

'हंसों के बीच में तुम बगुले को ले जाना चाहती हो ? तुम्हारे समाज के लोग क्या कहेंगे ?"—मोहन ने कहा ।

'तुम पागल हो, इससे अधिक मैं और कुछ नहीं कहूँगी. "—शैल ने कहा—"उठो, कपड़े बदल लो और मेरे साथ चले चलो !"

मैंने कल भी तुमसे कहा था कि मैं वहाँ न जा सकूँगा। यदि मेरे मुह से कोई ऐसी-वैसी बात निकल गयी तो व्यर्थ में तुम्हारा अपमान हो जायेगा "—मोहन ने कहा—'इसलिए अच्छा यही है कि तुम अकेली चली जाओ । मेरे लिए परेशान न हो !"

शैल ने जरा गम्भीर स्वर में कहा—'तो क्या तुम्हारा यही आखिरी निश्चय है ? "

"अब जैसा समझ लो !"—मोहन ने कहा ।

"मेरे लिए भी नहीं "

मोहन कुछ बोल नहीं सका । चुप रहा ।

उसकी बाह पकड़ कर शैल ने अनुरोध भरे स्वर से कहा—'तुम्हें मेरी सौगन्ध ! आज भर चले चलो । फिर कभी किसी पार्टी में मैं तुम से चलने को नहीं कहूँगी "

मोहन ने उसे देखकर अपनी आँखें झुका लीं, जैसे आत्म-समर्पण कर दिया हो ।

शैल ने समझा । समझा, मुस्करायी और बोली—'तो उठो । कपड़े बदल लो ! '

मोहन आज्ञाकारी बच्चे की तरह उठा और उठकर कपड़े बदल लिए । कन्धे पर सफेद शाल और पैर में सफेद चप्पल डालकर बोला—"चलो !"

शैल ने उसकी ओर देखा । सोचा कि मोहन से परिहास का

बदला लेने का अवसर आ गया है। बोली—"लगता है कि अपनी मंगेतर को देखने जा रहे हो, कम से कम तुम्हारे इस समय के पहनावे से तो यही लगता है।"

मोहन ने शैल की शरीर से चमकती आँखों को देखा और बोला—"मंगेतर देखने नहीं, उसे साथ लेकर उस सोसाइटी में जा रहा हूँ, जहाँ बाहरी तड़क-भड़क से ही आदमी का मूल्य आंका जाता है। इसलिए यदि अपनी मंगेतर के लिए मैंने साफ-सुथरे कपड़े पहन लिये तो क्या हुआ!"

अपना वार अपने को ही लगते देखकर शैल लजा उठी। कुछ बोली नहीं, चुपचाप सिर झुका लिया, जैसे वह शादी के बाद पहली बार उसके सामने आ रही हो।

मोहन ने मुस्करा कर कहा—'अब लजाओ शैल! हाँ, तुम्हारे लजाने से यह लाभ अवश्य हुआ कि मैं अब देर नहीं करूंगा, क्योंकि बीस-पच्चीस मिनट की देर तो हो ही गयी होगी!"

"शुक्रिया"—शैल ने कहा—"चलो।"

और दोनों कमरे के बाहर आये।

दरवाजा बन्द कर ताला लगाते हुए मोहन ने कहा—"पैदल चलोगी या रिक्शे से?"

"न पैदल और न रिक्शे से-" शैल ने कहा—'कार आ गयी!"

ताला लगा कर मोहन ने देखा कि कार शैल की कोठी के आगे खड़ी-खड़ी उनका इन्तजार कर रही है। बोला—"तब तो ठीक है। देखते-देखते ही पहुंच जायेंगे!"

"चलोगे तब न पहुँचोगे कि बातें करने से पहुँच जाओगे?"—शैलने कहा।

"ओह!"—मोहन सड़क पार कर कार के पास आया।

शोफर ने सलाम कर कार का पिछला दरवाजा खोल दिया। पहले मोहन बैठा, फिर शैल।

शैल के बाद अपनी सीट पर बैठ कर ड्राइवर ने कार स्टार्ट की।

हिचकोले खाती हुई कार जब शैल की सहेली की कोठी के पोर्टिको में रुकी, तो मोहन को लगा कि इसके पहले वह यहा कभी आ चुका है। कब! कैसे? किसके साथ? उसने सोचा। पर याद नहीं आया।

सीढ़ियों पर से होकर दोनों अन्दर पहुँचे। हाल रोशनी से जगमगा रहा था और उसमें बैठे हुए मेहमान उसमें भीग रहे थे। किसी पर्दे के पीछे से विदेशी संगीत की धुन आकर धीरे-धीरे हाल की दीवारों से टकरा रही थी।

हाल में बैठे लोगों की दृष्टि उन पर अन्दर पहुँचते ही पड़ी। मोहन ने देखा कि जैसे ही उन लोगों की दृष्टि शैल पर से हट कर उस पर पड़ी उन्हें कुछ झटका-सा लगा, कुछ आश्चर्य हुआ। वैसा ही झटका जैसा तिलकधारियों को अपने मन्दिर में किसी अछूत को देखकर लगता है।

वह मन ही मन मुस्काया। झटका तो उन्हें लगना चाहिये। कहाँ वे और कहा वह! कीमती सर्ज के सूट पहने हुए, उगलियों में हीरे की अंगूठियाँ और गले में मूल्यवान हार पहने हुए लोगों के बीच साधारण कुर्ता, जैकेट पहने और मामूली शाल कन्धे पर रक्खे यदि कोई पहुँच जाय, तो उन्हें झटका तो लगेगा ही। औरतों के दामन पर बदनुमा दाग देखकर लोगों को झटका-सा लगता ही है।

इस चीज को वह जानता था, इसीलिए वह नहीं आना चाहता था, पर शैल के आगे उसकी एक नहीं चली। औरतों के आगे पुरुषों की कब चलती हा है!

छिपी-छिपी दृष्टि से वह सबको देख रहा था, परख रहा था कि उसे अपने बीच में देखकर किस पर क्या प्रभाव पड़ रही है।

खिसकते-खिसकते उसकी दृष्टि शैल के भाई रामनाथ पर पड़ी, जो रेडियो के पास बैठा हुआ था। उसे लगा कि उसे देखते ही रामनाथ के

सारे शरीर में आग-सी लग गयी है और वह उसके साथ साथ शैल को भी बुरी तरह से घूर रहा है मानों को कच्चा ही चबा जायगा। यदि मेहतर किसी ब्राह्मण मिनिस्टर की बगल में बैठ जाय, तो वह मिनिस्टर भी उसे ऐसा ही दृष्टि से देखता है।

रामनाथ को और उसकी दृष्टि को देखकर वह उतना नहीं चौंका, जितना रेडियो पर रक्खे फ्रेम के बीच की तस्वीर को देखकर चौंका। पहले तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ अपनी आँखों पर। आँखें मिल-मिलाकर उसने फिर उसे देखा और तब उसे विश्वास करना ही पड़ा।

और तब उसे लगा कि जैसे वह किसी ऐसी कोठरी मे आ गया है जहाँ पीप की बदबू के सिवा और कुछ नहीं है। और कुछ नहीं है, केवल ये लोग हैं जिनके सारे शरीर से पीप बह रहा है और उस पीप की बदबू आ रही है, जिसमें उसके प्राण निकल जाने को सिसक रहे हैं।

उसने चाहा कि वह वहाँ से भाग जाय। एक क्षण भी नहीं ठहरे। यदि ठहरेगा तो मर जायगा। भागने के लिय उसने पाँव उठाये ही थे कि शैल ने उससे धीरे से कहा—'देखो, मेरी सहेली आ रही है। दिल को सँभाल कर रखना!"

मोहन कुछ बोला नहीं। आँखें ऊपर कर अपनी ही ओर आती मनोरमा को देखा। देखा और सिहर उठा। सिहर उठा और सोचा कि मनोरमा जैसी दुराचारिणी शैल की सहेली कैसे बन गई! क्या शैल नहीं जानती कि वह वेश्याओं से भी गिरी हुई है? वेश्यायें तो अपना पेट भरने और तन ढाँकने के लिए अपना तन वेचती हैं। वे मजबूर हैं। पर यह? यह तो मजबूर नहीं है फिर भी अपना तन लुटाती फिरती है। केवल आनन्द के लिए, अपनी वासना-तृप्ति के लिए।

उसने तिरछी निगाह से शैल को देखा। ऐसी बातें तो छिपती नहीं, कम से कम औरतों से। तो क्या शैल सब कुछ जानते हुए भी उसे अपनी सहेली बनाए हुए है? लगता तो कुछ ऐसा ही है

मोहन के मन में सन्देह की लकीर खिच गई। यदि सब कुछ जानते हुए भी वह उसकी सहेली बनी है, तो और उसके आगे वह कुछ नहीं सोच सका। मन में हूक-सी उठ आयी और अपने सिर को हलका-सा झटका देकर उसने अपने मन में उठे इस विचार को हटा दिया।

जिसे वह प्यार की देवी मान चुका था, उसे मनोरमा के धरातल पर वह नहीं रख सकता था। जिसपर उसने विश्वास दिया था, उसका अविश्वास नहीं कर सकता था।

मनोरमा पास आ गई थी।

पास आकर उसने मोहन को देखा। और क्षण भर के लिए उसका चेहरा फक्क हो गया। पर शीघ्र ही उसने अपने पर काबू पा लिया और शैल को ओर देखकर रहस्यमयी मुस्कान मुस्का पड़ी।

"आओ मनो, मैं इनसे तुम्हारा परिचय करा दूँ। ·"—शैल ने कहा।

"इसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हम एक दूसरे को अच्छी तरह जानते हैं "—मनोरमा ने मुस्करा कर कहा–"क्यों न मिस्टर मोहन !"

शैल सस्मित-सी बोल उठी—"तुम दोनों एक दूसरे को जानते हो। कैसे ? कब से ?"

"हाल ही की ट्रेन ऐक्सीडेन्ट से। यदि इन्होंने मुझे न बचाया होता, तो शायद मैं अपनी बीसवीं वर्ष गाँठ भी न मना पाती !..."—मनोरमा ने कहा।

मोहन चुप रहा, कुछ बोला नहीं।

और बोलता भी क्या ? वह सोच-समझ ही नहीं पा रहा था कि उसे क्या करना चाहिए। हर क्षण वह वहाँ से भाग जाना जाहता था, पर शैल का ख्याल उसके पैरों में जंजीर बन कर रह गया था। चाहते हुए भी वह आज़ाद नहीं हो पा रहा था।

शैल धीमे से मुस्कुरायी। बोली—"लेकिन लगता है तुम लोगों का परिचय बस ट्रेन के सफ़र-सा है!"

"क्या मतलब?—मनोरमा ने पूछा।

"मतलब यह कि जनाब को मलका की 'बर्थ डे पार्टी' में अपनी सौगन्ध दिला कर लाना पड़ा है!"—शैल ने कहा।

"इसके लिए शुक्रिया। यह तो बताओ कि इतनी देर क्यों कर दी? सारा प्रोग्राम खत्म हो गया है, तब तुम आई हो!"—मनोरमा ने शिकायत की।

"देर मेरी नहीं इनकी वजह से हुई है"—मोहन की ओर इशारा करके शैल ने कहा—"सजा इनको देना, मुझे नहीं!"

वासना में डूबी हुई अपनी आँखों को शोखी से नचाकर मनोरमा ने कहा—"तुम घबड़ाओ मत। मैं इन्हें ऐसी सजा दूँगी कि ये भी याद करेंगे।"

मोहन के सारे शरीर मे आग-सी लग गई। खून का घूँट पीकर वह रह गया।

"आओ बैठो। अब डिनर ही होना रह गया"—मनोरमा ने कहा—"उधर दो कुर्सियाँ खाली है। उन्हीं पर बैठ जाओ!"

शैल ने कहा—'मैं भैया के पास बैठूँगी, नहीं तो वे बुरा मान जायेंगे! तुम इनके बैठने का प्रबन्ध कर दो!"

मोहन कुछ बोला नहीं। भाई के सामने, बिना शादी हुए, कैसे कोई हिन्दू युवती किसी पर-पुरुष के बगल में बैठ सकती है?

शैल ने मोहन की ओर देखा, जैसे जाने की इजाजत माँग रही हो, और फिर रामनाथ की बगल में बैठ गई।

मनोरमा के इशारे पर मोहन भी एक कुर्सी पर बैठ गया।

कई क्षणों तक रामनाथ चुप रहा फिर भुन्नाये से स्वर में बोला—"तुम्हारे साथ यह कौन है, शैल? लगता है मैंने इसे कहीं देखा है...."

"जरूर देखा होगा भैया आपने! हमारी कोठी के सामने वाली कोठरी में ही वे रहते हैं··"—शैल ने कहा—"ऐसे नेक आदमी आपको बहुत कम मिलेंगे।···"

"हूँ! इसी के बारे में तो तुमने बताया था न! क्या नाम बताया था तुमने? म मोहन? यही न?"—रामनाथ ने कहा।

और फिर दूसरे ही क्षण आप ही बोल उठा—"क्या मोहन?·· कहीं यह वही मोहन तो नहीं है जिसने 'मरघट' लिखी है?"

शैल ने गौरवान्वित होकर कहा—"हाँ, भैया, 'मरघट' के लेखक यही हैं। पर आपने 'मरघट' का नाम कैसे सुना?"

अपने मन के क्रोध को दबाते हुए रामनाथ ने कहा—"सुना ही नहीं है शैल, पढ़ा भी है। केवल मैंने ही नहीं, यहाँ बैठे हुए लगभग सभी लोगों ने पढ़ा है और तभी से हम 'मरघट' के मोहन के 'दर्शन' करने को उत्सुक थे, सो आज अवसर मिल ही गया।"

शैल को लगा कि यह उसके भाई रामनाथ की नहीं किसी दूसरे रामनाथ की आवाज है, जो क्रोध-प्रतिहिंसा की भावना में अन्दर ही अन्दर जला जा रहा है।

चौंक कर उसने रामनाथ को देखा और उसकी आशंका सच निकली। क्रोध से जलती हुई रामनाथ की आँखें मोहन को बुरी तरह से घूर रही थीं। रह-रह कर मरोड़ खाने वाली उँगलियों को देखकर उसे लगा कि रामनाथ पर इस समय क्रोध के साथ-साथ हिंसा भी सवार है और वह उसे दबाने की कोशिश कर रहा है।

मन ही मन शैल काँप उठी। उसका हृदय आशंका से काँपने सा लगा।

उसकी सहमी हुई आँखों ने मोहन की ओर देखा, जो चुपचाप बैठा था। उसने सोचा कि मोहन को यहाँ लिवा कर उसने हिमालय से भी बड़ी भूल कर दी है। मोहन जैसे इन्सानों के लिए यह जगह नहीं

है । यह तो केवल उन दरिन्दों, भेड़ियों के लिए है, जो खून चूसते हैं, चोरबाजारी करते हैं, लड़कियों का व्यापार करते हैं, पाप करते हैं, धर्म और ईश्वर के नाम पर लोगों को लूटते हैं। यदि यहाँ कोई ऐसी बात हो गई, तो वह कहीं की नहीं रहेगी, उसकी और उसके साथ-साथ उसके मोहन की जिन्दगी भी बरबाद हो जायेगी।

उसके मन को चोट लगी। आँखों में पीड़ा के घन उमड़ आए।

उसने सोचा कि कोई बात होने से पहले ही वह मोहन को वहाँ से चला जाने को कह दे। सोचा, पर वह न सकी। इतने लोगों के बीच उसकी हिम्मत नहीं पड़ी मोहन के पास जाने की, उससे कुछ कहने की।

पिंजडे में बन्द पक्षी की तरह वह मन मारे बैठी रही।

सगीत की खामोश लहरियाँ दीवालो से टकरा रही थीं।

मनोरमा अन्दर जाकर अपने पिता सुबोध एडवोकेट को लेकर वापस आयी। डाइनिंग टेबुल के सिरे पर की अपनी कुर्सी के पास खड़े होकर उन्होने सबकी अभ्यर्थना की और विलम्ब से उन लोगों के बीच आने के लिये क्षमा माँगी।

ये कुर्सी पर बैठने ही वाले थे कि मनोरमा ने मोहन की ओर इशारा करके फुसफुसाकर कुछ कहा।

मनोरमा की ओर क्षण भर के लिए सुबोध ने देखकर मोहन की ओर देखा और मुँह से सिगार निकाल कर कहा—"लेडीज़, ऐण्ड जेन्टलमेन! आज मैं आप लोगों को अपने एक नए दोस्त से इन्ट्रोड्यूस करता हूँ। आप मिस्टर मोहन हैं। आपने मेरी बेटी की हाल ही में हुए ट्रेन ऐक्सीडेण्ट में जान भी बचायी थी!.."

मोहन कुछ बोला नहीं, चुप रहा।

सब की निगाहें मोहन पर जम गईं।

सुबोध कुछ और कहने जा रहे थे कि रामनाथ ने उठकर कहा—

"वैरिस्टर साहब ने मोहन जी का अधूरा परिचय दिया है, उनका पूरा परिचय मैं आप लोगों को देता हूँ!"

सबकी निगाहें मोहन पर से हटकर रामनाथ पर जा लगीं। मनोरमा और सुबोध ने उसे आश्चर्य से देखा। यदि वह भी मोहन को जानता था, तो अब तक चुप क्यों था?

शैल का दिल जोरों से धड़कने लगा। उसे लगा कि अब तूफ़ान आने ही वाला है। ऐसा तूफान जो कुछ करके ही रहेगा।

मोहन की आँखें भी उठीं और रामनाथ पर जा लगीं।

रामनाथ ने कहा—"मनोरमा, सुबोध और मेरी बहन शैल के लिए मोहन शरीफ़ है, क्योंकि उसने उन लोगों की रक्षा की थी, सहायता की थी। पर मेरे लिए और आप लोगों के लिए वह शरीफ नहीं गुण्डा है, बदमाश है।··"

सब की सांसें रुक सी गईं, जैसे सब पर फ़ालिज् गिर पड़ी हो।

शैल, मनोरमा, मोहन या सुबोध कुछ बोलें बोलें कि रामनाथ फिर बोल उठा—"आप लोगों को आश्चर्य हो रहा होगा, पर मैंने जो कहा है, वह सत्य है, उतना ही सत्य जितना आसमान का नीला होना।"

"रामनाथ जी! आप हमारे मेहमान का अपमान कर रहे हैं।···" मनोरमा बोल उठी—"आप के पास इसका क्या सबूत है कि मोहन जी गुण्डे या बदमाश हैं ?"

"सबूत सुनना चाहती हैं आप? तो सुनिए। मोहन ही 'मरघट' का लेखक है। 'मरघट' लिखकर उसी ने हमें, हमारी बहू-बेटियों को बेइज्ज़त करने की कोशिश की है, हमें मिटाने की कोशिश की है।··"

शैल को तो जैसे काठ मार गया था। उसकी समझ ही में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है?

रामनाथ की बातें सुनते ही हाल के सभी लोगों की दृष्टि मोहन पर पड़ गई। अपने झुण्ड के बीच में किसी बकरे को पा जाने पर जिस तरह भेड़िए उस पर टूट पड़ने के पहले घूरते हैं, उसी तरह वे उसे घूर रहे थे।

बस घूर ही रहे थे, जैसे घूर-घूर कर ही वे मोहन की हत्या कर देना चाहते हों। मन ही मन वे लोग झुलसे जा रहे थे, उसकी हत्या कर देना चाहते थे पर अपने स्थान से उठकर उस पर वार करने का किसी को साहस नहीं हो रहा था।

शैल, मनोरमा, मोहन की आशंका और रामनाथ की आशा अपना दम तोड़ने लगी।

मोहन उठ खड़ा हुआ। छरहरी नज़र से उसने सब को देखा और फिर शैल की ओर मुड़कर उसने कहा—"देख लिया न शैल! मैं जो बात कहता था, वही हुई न! तुमसे अधिक मैं इन नपुंसक भेड़ियों को जानता हूँ। जानता हूँ कि ये ..."

उसकी बात के ही बीच में एक कोने से रामनाथ के इशारे पर आवाज़ आयी—'मारो साले को'।"

इस आवाज ने लोगों पर बिजली का सा असर किया। सब के सब उस पर टूट पड़ने को लपके!

और टूट भी पड़ते यदि शैल गरज न पड़ती—"खबरदार!"

मोहन भी तड़प उठा—"तुम घबड़ाओ मत शैल! ये नपुंसक हैं। ये मेरा कुछ भी बना-बिगाड़ नहीं सकते।"—फिर अपने इर्द-गिर्द जमा हो गये लोगों की ओर घूम कर बोला—"तुम लोग मेरी हत्या करना चाहते हो, पर तुम क्या तुम्हारा भगवान भी मुझे नहीं मार सकता। मेरे लेखक तक तुम लोगों की छाया भी नहीं पहुँच सकती!"

मोहन की तड़प ने उन सबकी रगों में क्रोध और हिंसा के स्थान पर भय की लहरें दौड़ा दीं। उनके पैर फर्श पर चिपक से गए।

मोहन रुका नहीं, तड़पता ही रहा—"केवल 'मरघट' से ही तुम लोग बौखला गए हो। अभी तो मैंने कुछ भी नहीं लिखा है। 'मरघट' तो तुम लोगों के काले करनामों के सोलहवें भाग पर ही प्रकाश डालता है। जिस दिन सारी बातें प्रकाश में आ जायँगी, उस दिन तुम सब की, तुम्हारे समाज की, तुम्हारी प्रणाली की, तुम्हारे भगवान की सड़कों पर हत्या होगी और वह दिन दूर नहीं है "

हवा में पड़ गए सूखे पत्ते की तरह सब का शरीर काँप गया। चेहरों पर मुर्दनी-सी छा गई।

"मैंने जो कुछ लिखा है वह सब सही है। एक वाक्य भी उनमें गलत नहीं है। जो मैंने लिखा है, उसे मैं कहता भी हूँ, कहूँगा भी "

मोहन की तड़प जारी रही—"तुम समझते हो इसी तरह हमेशा जोंकों की तरह हम लोगों को चूसते रहोगे, पर ऐसा कभी नहीं होगा। तुम्हारी फूलती तोदें एक दिन फट जायँगी और तुम्हारे साथ-साथ तुम्हारी प्रणा-लियाँ भी मर जायँगी और तब हम तुम्हारी लाशों को चौराहों पर फेंक देंगे ताकि गुरजने वाले तुम्हारी लाशों को ठोकर मार सकें, उन पर थूक सकें, कुत्ते सियार उन्हें निचोड़ सकें .!"

सब की रुह तक काँप गई। उन्हें लगा कि उनका पेट सचमुच फट गया है और लोगों ने उनकी लाशों को चौराहों पर फेंक दिया है, जिनके साथ वही सब हो रहा है, जो मोहन ने कहा है।

मोहन चुप नहीं हुआ—"हर महीने की पहली तारीख को रुपयों के बल पर औरतें खरीदने वाला यह रामनाथ भी कहता है कि मैंने उसकी बहू-बेटियों की बेइज्जती की है। मैंने लिखा है और आज तुम्हारे मुँह पर कहता हूँ कि धन ने तुम्हें जानवर ही नहीं, नपुसक भी बना दिया है जिसकी वजह से तुम्हारी औरतें, बहुएँ, बेटियाँ वेश्याओं से भी अधिक व्यभिचारिणी हैं। तुम लोगों से निराश होकर वे भिखारियों तक

से काम वासना तृप्त करती हैं। और अगर तुम सबूत चाहते हो, तो मैं तुम्हें सबूत भी दे सकता हूँ। ·"

सब के सब दीवालों पर बने चित्रों की तरह मूक और निर्जीव हो गए थे। श्रवणेन्द्रियों के अतिरिक्त उनकी सभी इन्द्रियाँ मरणासन्न हो गई थीं।

रेडियो पर रक्खे फ्रेम को उठा कर उसने मेज पर फेंक दिया। पचीसों तस्वीरें मेज पर फैल गईं।

मनोरमा वहाँ खड़ी नहीं रह सकी। अन्दर भाग गई। सुबोध की आँखें नीची हो गईं।

"यह तुम्हारे समाज की एक लड़की है, पर अभी तक अविवाहित है। पर उसने पचीसों युवकों से लैंगिक सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। मेज पर तुम्हारे सामने बिखरी ये तस्वीरें इस बात की गवाह हैं '

मोहन बोला—"कल इसका विवाह हो जायेगा। ससुराल में जाकर यहअपने पति के साथ-साथ अपने ससुर, अपने देवर, अपने बेटों-भतीजों और नौकरों के भी बगल में सोयेगी। यह केवल एक की बात नहीं है। तुम सब के घर में यही होता है। फिर भी तुम यही कहते हो कि मैंने तुम लोगों का अपमान किया है! अगर सच बात को कहना तुम अपमान समझते हो, सो कर लो मेरा जो कुछ तुम लोग कर सकते हो।"

कह दो-तीन क्षणों तक मोहन अपने स्थान पर खड़ा रहा, फिर तेजी से बाहर दरवाजे की ओर बढ़ा।

अभी दरवाजे पर ही वह पहुँचा था कि शैल की आवाज ने उसके पाँव रोक दिए!

मुड़कर उसने देखा। शैल उसी की ओर बढ़ी आ रही थी।

पास आकर भरे गले से उसने कहा—"रुको मोहन, मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ!"

"नहीं शैल, तुम्हारी दुनियाँ मेरी दुनियाँ से बिल्कुल अलग है। न तुम उस दुनियाँ से मेरी दुनियाँ में आ सकती हो और न मैं अपनी दुनियाँ छोड़कर तुम्हारी दुनियाँ में आ सकता हूँ, लौट जाओ शैल, अपनी दुनियाँ में लौट जाओ!"—कह, मोहन आगे बढ़ा।

"मोहन! रुक जाओ मोहन! मैं अब तुम्हारी दुनियाँ की हो चुकी हूँ। मुझे इस जहरीली दुनियाँ में अकेली छोड़कर न जाओ मोहन, न जाओ! यहाँ मैं मर जाऊँगी।"—सिसक कर शैल ने कहा।

"गलत कहती हो शैल! ठंढे मुल्क का आदमी गर्म मुल्क में नहीं बस सकता।"—मोहन कहा—"तुम लौट जाओ। तुमसे मुझे कोई शिकायत नहीं है, पर मैं जानता हूँ कि नदी के दो किनारों की तरह मेरा-तुम्हारा मिलन नहीं हो सकता, इसलिए कहता हूँ कि लौट जाओ!"

"मोहन! .."

"मोहन को भूल जाओ, शैल! समझ लेना कि ट्रेन में हमारा साथ हुआ था, तुम बीच ही में उतर गई और मैं ट्रेन के साथ दूर, बहुत दूर, तुम्हारी दुनियाँ से दूर चला गया! .."—मोहन ने कहा।

"मोहन!"—शैल सिसक पड़ी।

मोहन को लगा कि उसका मन कमजोर होता जा रहा है। शैल को सिसकती छोड़कर वह नहीं जाना चाहता, नहीं जा सकता।

उसके उठते पाँवों में भी कमजोरी-सी आई जैसे वे भी रुक जाना चाहते हों, पर उसने क्षण भर ही में इस कमजोरी को नीचे दबा दिया।

और तब उसके पाँव तेजी से चल पड़े। मुड़कर भी नहीं देखा उसने!

शैल की आँखें बरस पड़ीं।

बरसती आँखों से वह अपनी जिन्दगी को अपने से दूर, बहुत दूर जाती देखती रही। उसने चाहा कि दौड़ कर उन पाँवों को पकड़ ले

और कहे कि जीते जी वह इन चरणों को नहीं छोड़ेगी। तब भी क्या मोहन इतना निष्ठुर बना रह सकेगा कि उससे अपने पाँव छुड़ा कर चला जायेगा?

लेकिन मन जब पीड़ा से तड़पने लगता है तब उसे रोने के सिवा और कुछ नहीं सूझता।

भोर में हिलती हुई फूल की डाली से चूती हुई शबनम की बूँदों की तरह उसकी आँखों से आँसू चूते रहे।

चूते रहे और वह सिसकती रही। सिसकती रही और आँसू चूते रहे।

२१

मोहन लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ आगे बढ़ा जा रहा था। किधर ? उसे जैसे कुछ ध्यान ही नहीं था। बस उधर ही चला जा रहा था, जिधर उसके पाँव उसे लिए जा रहे थे।

मन में अजीब सी हलचल मची थी। और वह उस हलचल में धक्के खाता हुआ अपने तक को खोता जा रहा था।

खोता जा रहा था और चलता जा रहा था, जैसे चलते-चलते वह सब कुछ भूल जाना चाहता हो, अपने -आपको, अपने आस-पास के लोगों को, उनकी बातों को, अपने मन में समा गई शैल को, जिसके बिना उसकी जिन्दगी मौत-सी वीरान हो जायेगी। फिर भी वह सब कुछ सब को भूल जाना चाहता था, ताकि उसके मानस में तूफान न हो, मन में हलचल और दर्द न हो। बस, इसलिए।

इसीलिए वह चल रहा था। चलते-चलते अपने तन और मन दोनों को थका कर चूर कर डालना चाहता था। थक जाने पर आदमी थकान के अलावा सब कुछ भूल जाता है। वह जानता था कि अपने को अपने मन के मीत को, अपने आस-पास के उन लोगों को, जिनकी वजह से आज उनके मन में ऐसी हलचल उठ रही है, उसे ऐसी मर्मान्तक पीड़ा हो रही है, वह चाहकर भी नहीं भुला सकेगा। इसलिए वह थोड़ी ही देर के लिए सब कुछ सबको भुला देना चाहता था।

चाँद अभी आकाश में उठा नहीं था, पर रात अँधेरी नहीं थी, कम से कम सड़क की, सड़क के अगल-बगल की। बिजली चमकती

बत्तियों ने रात के अँधेरे का छीन लिया था, जैसे ये पूँजीशाही दरिन्दे लोगों के मुँह से रोटियाँ छीन लेते हैं।

सड़क जगमगा रही थी। सड़क पर चलने वाले लोग जगमगा रहे थे और उस जगमगाती सड़क पर चलने वाले जगमगाते लोगों को देखता हुआ वह भी चला जा रहा था। चुपचाप। मन की हलचल और पीड़ा को सहलाते हुए।

सामने से चमकती हुई युवतियों का एक झुण्ड आ रहा था।

उसके पाँव क्षण भर को ठिठक गए। ठिठक कर उसने सब को देखा एक-एक को देखा। सभी गोरी चिट्टी। बनी-सँवरी। यौवन के भार को उठाती, दिखाती, छलकाती। सभी के चेहरों पर पाउडर की परत, होंठों पर लिपिस्टिक की हलकी-हलकी लाली। आँखों में दूर तक खिंचा हुआ काजल। कानों में सोने के इयरिंग, गले में हीरे-सोने के हार, हाथों में हाथीदाँत व सोने की चूड़ियाँ। बदन पर कीमती जार्जेट की साड़ी जिसमें से कीमती कपड़े का ब्लाउज और उसके नीचे बाडिस में कसी हुई जवानी की उभरती निशानी झलक रही थी। पैरों में रेशमी चप्पल। सभी की माँगें सूनी-सूनी, जैसे लोगों को अपने पास बुला रही हों।

ऊनी कपड़ा किसी के भी बदन पर नहीं, जैसे सर्दी किसी को लगती ही नहीं।

उसने अगल-बगल से और गुजरने वालों को देखा। गर्म कपड़े पहने हुए भी वे ठिठुरते से जान पड़ रहे थे और स्वयं वह भी थोड़ी-थोड़ी सर्दी महसूस कर रहा था।

व्यंग भरी मुस्कान उसके होठों पर फैल गई। क्यों लगे इन्हें सर्दी ? जिसके बदन में रुपये और दूसरे पुरुषों के रक्त की गर्मी हो, उन्हें भला सर्दी कैसे लग सकती है, और जब सर्दी नहीं लगेगी तो गर्म कपड़ों को क्या आवश्कता ?

उसके ठिठके पाँव फिर बढ़ चले।

जगमगाती सड़क दूसरी ओर मुड़ गई और वह सड़क पर आ गया, जो जगमगा नहीं रही थी इसलिए कि उसकी अगल-बगल में अमीरों की कोठियाँ नहीं थीं।

कुछ बत्तियाँ उस सड़क पर भी थीं, पर वे सबकी सब टी० बी० के मरीज की तरह थीं, जो न ठीक से जल पाती थीं और न ठीक से बुझ पाती थीं।

उसके तेज़ कदम फिर धीमे पड़ गए। पास ही एक सिनेमा हाउस था, जिसमें कोई "आँख मिलो दिल चला गया" टाइप का चित्र चल रहा था।

सिनेमा-हाउस के आखिरी सिरे पर एक मोटर खड़ी थी जिसमें लगभग पचीस-छब्बीस वर्ष की एक सेठानी बैठी थीं और फटे कपड़ों से अपने बदन को किसी तरह ढँकने का प्रयास करती हुई एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की युवती सेठानी से भीख माँग रही थी।

मोटर के पास पहुँचते ही उसने सुना। सेठानी कह रही थी—"भाग यहाँ से और जा किसी के पास। वहाँ तुझे पैसे ही नहीं, रुपए भी मिलेंगे।"

घूर कर उसने सेठानी को देखा। उसका जी हुआ कि लपककर वह उस सेठानी का गला दबा दे जो अपने वर्ग की ज़हरीली हवा दूसरे वर्गों में भी फैलाना चाहती थी।

उसका क्रोध जैसे ही अपनी चरम सीमा पर पहुँचा, सेठानी की कार आगे बढ़ गई और तब वह क्रोध उसी माँगने वाली लड़की पर उतरा। कस कर उसने एक तमाचा उसके गाल पर लगाया।

लड़की बिचारी झौंझिया उठी और जब सँभली तो उसकी आँखों में आँसू भर आए। उसने अपनी आँसू से भरी आँखें मोहन की ओर उठा दीं जैसे पूछ रही हों कि मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था बाबू, जो तुमने इतनी बेदर्दी से मुझे मार दिया?

मोहन का क्रोध अभी नहीं उतरा था। बोला—"इतनी बड़ी हो गई, फिर भी हाथ फैलाती है लोगों के सामने?"

वह चुप। पर आँखों के आँसू जैसे चुप नहीं थे। बोली—"तुम्हीं बताओ क्या करूँ?"

"माँगने से तुझे पैसे क्या, रोटी का एक टुकड़ा भी नहीं मिलेगा, क्यों कि तू कमजोर है, माँगने के सिवा और कुछ कर नहीं सकती। तुझे जबर्दस्ती छीनना चाहिए, लूटना चाहिए, तभी तू भूखी नहीं रहेगी, नंगी नहीं रहेगी! .."

वह फिर भी चुप रही, जैसे उसकी समझ में कुछ आ न रहा हो।

उसकी आँखों से बहते आँसू देखकर मोहन का मन भर आया। अपनी जेब से दस रुपए का एक नोट निकालकर उसने कहा—'ज्यादा चोट तो नहीं लगी '' क्षण भर रुक कर फिर कहा—"अच्छा यह ले और भाग जा अपने घर। और देख, अब कभी इन अमीरों से भीख मत माँगना। चाहे इनसे छीन लेना, इनको लूट लेना, पर भीख मत माँगना ."

कह, वह आगे बढ़ गया।

पर दो पग जाकर फिर रुक गया और मुड़ कर पीछे देखा। देखा, वह वैसी ही बुत बनी खड़ी है।

लौट कर उसके पास आया और बोला—"पोंछ ले अब तो अपने आँसू और नोट सँभाल कर रख ले। कहीं गिर न जाय।.... अब तो तू नाराज़ नहीं है न?.."

उसने अपने अपने आँसू पोंछ लिए और सिर हिला दिया।

मोहन मुस्कुरा उठा और आगे बढ़ गया।

अपनी कोठरी तक पहुँचते-पहुँचते वह मनोरमा के यहाँ हुई बात को भूल सा चुका था पर अपने दरवाजे पर पहुँचते ही जब उसने अपनी

कोठो के दरवाजे के पास खड़ी शैल को देखा, तो सारी बातें उसे फिर से याद हो आईं और उसका मन फिर बेचैन हो उठा।

वह जानता था कि मनोरमा के यहाँ जाने से ऐसी बातें उठेंगी और वे उठीं भी। अगर शैल जिद करके उसे अपने साथ न लिवा जाती, तो काहे को यह सब होता! काहे को उसका अपमान होता?

पर इसमें बिचारी शैल का भी क्या दोष था? वह भी तो नहीं जानती थी कि ऐसा हो जायेगा। उसे भी तो नहीं मालूम था कि वहाँ आने वाले सभी लोगों ने उसकी 'मरघट' पढ़ ली होगी और वे-सब के सब-उसके लेखक की हत्या कर देने की तलाश में हैं।

यदि वह जानती होती तो जिद करने को कौन कहे, एक बार भी न कहती और संभवतः स्वयं भी न जाती।

इतने पर भी उसी क्रोध में उसने भी दिल पर ठेस लगा दी। उसके रोकने पर भी नहीं रुका। वह उसे बुलाती ही रह गयी और वह चुपचाप चला आया, जैसे वह शैल का कोई नहीं, शैल उसकी कोई नहीं।

और वही शैल यहाँ खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही है। पश्चाताप से भर उठा उसका मन। कितनी बड़ी गलती की है उसने। इस गलती को सुधारने के लिए उसे शैल से माफी माँगनी ही चाहिए!

उसने फिर शैल को छिपी निगाहों से देखा।

पर अब वह उसके पास कौन-सा मुँह लेकर जाये? क्या शैल उस बात को इतनी जल्दी भूल गई होगी, जब कि वह स्वयं नहीं भूल पाया है?

और भूल भी कैसे सकेगी? दिल पर लगी चोट कोई भूलता है कि शैल ही भूल जायेगी? न, वह नहीं जा सकेगा उसके सामने। इतना साहस उसमें नहीं है। लिखकर वह माफी माँग लेगा और यदि माफ कर देगी, तभी वह उसके सामने जाने लायक होगा।

चुपचाप ताला खोलकर उसने अन्दर पैर रक्खा ही था कि शैल की दर्द में लिपटी आवाज आयी—"मोहन!"

मोहन के पाँव ठिठक गए। उसे विश्वास नहीं हुआ, पर अविश्वास का कोई कारण भी नहीं था। शैल ने ही उसे पुकारा है। वह सब कुछ भूल गई है। बस उसे केवल वह याद है और कुछ नहीं।

और तब उसका मन भर आया और वह बोल उठा—"शैल!"

शैल ने जब मोहन की आवाज सुनी, तो उसके पैरों में पंख लग गए और वह भाग कर मोहन के पास चली आयी। जैसे वह मोहन की आवाज का ही इन्तजार कर रही हो!

पास आकर शैल ने भरे गले से कहा—"मुझे माफ कर दो मोहन। मेरी वजह से...."

उसके होठों पर अपनी उँगलियाँ रखकर मोहन ने कहा—"उसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं था शैल, तनिक भी नहीं। मैंने ही उस समय तुम्हें जाने क्या-क्या कह दिया था। तुम मुझे माफ कर दो!"

शैल की आँखों के आँसू प्रसन्नता से चमक उठे। उसने सोचा था कि मनोरमा के यहाँ अपमान हो जाने से मोहन उससे अवश्य नाराज हो गया होगा। पर उसका ख्याल गलत निकला। मोहन साधारण नहीं असाधारण व्यक्तित्व का आदमी है।

धीरे से बोली—"गलती दोनों से हुई है, इसलिए तुम मुझे माफ कर दो और मैं तुम्हें!.."

"अगर तुम कहती हो कि गलती तुमने भी की है तो माफ कर दिया!" मोहन ने कहा—'अब तुम भी माफ कर दो!"

"मैंने तो उसी समय कर दिया था!"—शैल ने मुस्कुरा कर कहा।

"ओह..!"—मोहन मुस्कुरा उठा—"बड़ी चालाक हो। क्यों न हो, आखिर हो औरत ही न?"

शैल कुछ बोली नहीं, केवल मुस्कुरा दी।

———

२२

कटघरे में से मोहन ने न्यायालय को देखा, जहाँ उस पर प्रेस-ऐक्ट केअन्तर्गत मुक़दमा चलाया जा रहा था।

गैलरी में खड़े और बैठे दर्शकों पर से होकर उसकी दृष्टि सरकारी वकील, पेशकार और न्यायाधीश पर से होती हुई न्यायाधीश के सिर के ऊपर दीवाल पर टँगी गाँधी जी और राष्ट्रपति की तस्वीर पर रुक गई।

और विद्रूप भरी मुस्कान उसके होंठों पर फैल गई। ईसा के नाम पर ही तो आजकल लड़ाइयाँ लड़ी जा रही है। गाँधी के नाम पर ही अन्याय और भ्रष्टाचार को छिपाया जा रहा है।

अपने सामने रक्खी फाइल को उलट-पलट कर देखने का अभिनय कर न्यायाधीश ने सरकारी वकील की ओर देखा।

और तब सरकारी वकील ने अपने कल के अधूरे बयान को पूरा किया—"माई लार्ड, मुलजिम ने अपने 'मरघट' उपन्यास से देश में वर्ग-विद्वेष फैलाने की चेष्टा की है, जिससे देश की सुरक्षा और शान्ति के खतरे में पड़ जाने की आशंका है। इसने समाज के एक वर्ग को समाज के दूसरे वर्ग और सरकार को अवैधानिक तरीकों से नष्ट कर देने की उकसाया ही नहीं है, उन्हें प्रोत्साहन भी दिया है।"

मोहन ने मुस्कुरा कर सरकारी वकील की ओर देखा, जो 'हिज मास्टर्स वायस' की तरह बिना रुके बोलता जा रहा था। उसे लगा कि यह वकील इन्सान नहीं, मशीन है। तभी तो इसे जो पढ़ाया गया है, बताया गया है, कहने को कहा गया है, कह रहा है।

वकील पर से हट कर उसकी दृष्टि गंभीर मुद्रा बनाए न्यायाधीश पर

गयी और उसे लगा कि वह न्यायाधीश किसी फिल्मी अदालत का न्यायाधीश है, जो फिल्म-लेखक के संवाद को निर्देशक के संकेत पर बोलेगा।

सरकारी वकील ने क्षण भर रुक कर अपने चेहरे को रुमाल से पोंछा, जैसे वह पसीने से भीग रहा हो, और फिर उसने अपना बयान जारी किया—"मुलजिम ने देश के लोगों को नैतिक पतन के मार्ग पर ले जाने की चेष्टा की है, सरकारी वकील की हैसियत से मुलजिम पर मैं यह दूसरा अभियोग लगाता हूँ। वर्ग-विद्वेष फैलाने के साथ-साथ इसने अश्लील साहित्य का भी सृजन किया, जो भारतीयता, भारतीय परंपरा और मर्यादा के विरुद्ध है। इसने एक वर्ग की औरतों को वेश्या सिद्ध किया है और उस वर्ग के अलावा दूसरे वर्ग के पुरुषों को उसने उनके साथ बलात्कार तक करने को उकसाया है। अपने उपन्यास में उसने ऐसे स्थलों का इस ढंग से चित्रण किया है कि पाठकों की कामेन्द्रियां इस बुरी तरह जाग उठेंगी कि सड़क पर औरतों का चलना-फिरना खतरे से खाली नहीं रहेगा!"

मोहन मुस्करा उठा। उसे लगा जैसे यह सरकारी 'ग्रामोफोन' (वकील) चिल्ला कर यह सिद्ध करना चाहता है कि जिनकी बहुओं और बेटियों को उसने वेश्या करार दिया है, वे पौराणिक कहानियों की सीता-सावित्री की तरह पवित्र हैं, और उनकी पवित्रता अब खतरे में पड़ गई है।

उसकी आँखें न्यायाधीश पर क्षण भर को रुकीं। सोचने का अभिनय कर रहा था और उसकी बगल में मरियल टट्टू के से पेशकार पर से होकर जूरियों पर पड़ी, जिनकी आँखें उसे खा जाना चाहती थीं।

उन पर से उसकी दृष्टि हट कर दर्शकों पर भी गई, जिनमें सभी वर्गों के लोग थे पर अमीर अधिक, उनसे कम बुर्जुआ क्लास के और उनसे कम बुद्धिजीवी वर्ग के।

अमीर वर्ग के लोग इसलिए अधिक थे कि यह नाटक उन्हीं के इशारे पर हो रहा था और वे उसका पटाक्षेप देखने आए थे। उनमें रामनाथ और उसके साथी भी थे।

बुर्जुआ क्लास में कुछ 'जीवित क्लर्क' (जिन्हें दफ्तर की फाइल्स, रजिस्टर्स और अफसरों की आँखें अभा नहीं मार सकी थीं) भी थे।

बुद्धिजीवी वर्ग में तीन-चार लेखक, दो-तीन पत्रकार और उतने ही के करीब प्रेस रिपार्टर थे।

न्यायाधीश ने अपना सिर उठाया और उसकी ओर देखा।

मोहन ने उन आँखों में देखा। देखा, और उसे लगा कि इस व्यक्ति की आँखें जितनी सूनी और कठोर हैं, उसका दिल ओर दिमाग भी उतना ही सूना और कठोर है। वह केवल एक मशीन, सिनेमा की बोलती मशीन बन कर रहा गया है।

ठीक ही तो है। मोहन जानता है। ऐसी कुर्सियों के लिए तो ऐसे ही आदमी छाँट कर रक्खे जाते हैं, जिनके दिमागकी जगह मशीन होती है ताकि वे अपने से कुछ सोच न सकें, बल्कि दूसरों का सोचा कह सकें और लिख सकें। यदि ऐसे आदमी न रक्खे जाँय, तो इन बदमाशों, शोषकों को सरकार की तीन चौथाई दीवाल तो अपने आप ढह जाय।

सरकारी वकील ने अपना बयान पूरा किया–"माई लार्ड, यह आदमी देश, सरकार और समाज के लिए अत्यन्त ही खतरनाक है। इसे कठोर से कठोर दण्ड मिलना चाहिए, ताकि भविष्य में यह ऐसा अपराध करने का फिर साहस न करे!"

नाटक का पहिला पात्र अपना रोल खत्म करके अपनी जगह चुपचाप बैठ गया था।

न्यायाधीश ने उसकी ओर देखकर पूछा—"अभी सरकारी वकील ने तुम्हारे ऊपर जो अभियोग लगाए हैं उसके जवाब में तुम्हें या तुम्हारे वकील को कुछ कहना है?"

मोहन ने अपनी आँखें न्यायाधीश पर जमा कर कहा—"तुम्हारे आकाओं ने मेरे पास इतना पैसा नहीं छोड़ा है कि तुम्हारे इस न्याय के नाटक में मैं भी एक पात्र लाकर खड़ा कर सकता, जो मेरी सफाई देता। और मुझे अपनी सफाई नहीं देनी है, क्योंकि मैंने जो लिखा है वह सब सच है, उसका एक एक शब्द सच है जिसे तुम भी जानते हो, जिनके खरीदे हुए तुम गुलाम हो। और जिनके इशारे पर तुम अपना फ़ैसला पहले से लिख चुके हो वे भी जानते हैं। और जब मैंने गलत नहीं लिखा है तो फिर कैसी सफाई? किस बात की सफाई? किसलिए सफाई?"

न्यायाधीश ने क्रोध भरे स्वर में कहा—"तुम क्या कह रहे हो, इसका तुम्हें ध्यान है? न्यायालय की तुम मान-हानि कर रहे हो . "

मोहन तड़प उठा—'न्यायालय की मानहानि? उस न्यायालय की, जो न्याय के नाम पर अन्याय करता है, जो न्याय के नाम पर ढोंग रचता है, न्याय का मजाक उड़ाता है! जो कुछ करना हो तुम्हें, तुम्हारे इस ढोंगी, पाखंडी न्यायालय को, कर लो। लेकिन मैंने जो लिखा है अभी जो कहा है, उसे हमेशा लिखता और कहता रहूँगा। तुम या तुम्हारे सरपरस्त मेरी क़लम नहीं छीन सकते, मेरी जबान नहीं बन्द कर सकते, कभी नहीं, कभी नहीं . "

उसकी तड़प से सारा हाल गूँज उठा और सब को लगा जैसे उनकी साँसें एकाएक बन्द हो गई हों। सबकी अपलक आँखें मोहन के तमतमा आए चेहरे और लाल-लाल हो आई आँखों पर जम गईं।

रामनाथ और उनके साथियों के रक्त में सर्दी-सी समा गई। वे काँप उठे। डर गए कि कहीं मोहन की तड़प न्यायाधीश को हिला न दे, कहीं वह उनके बताए हुए फैसले के विरुद्ध न लिख दे।

बुर्जुआ क्लास के लोगों की नसें झनझना उठीं। उन्हें लगा कि जैसे बिजली आकाश पर नहीं, उन्हीं के कानों के पास कड़की है।

बुद्धिजीवी वर्ग को लगा कि उनकी दुनियाँ का प्रगतिवादी लेखक

खरीदा नहीं जा सकता ! दुनिया की कोई ताकत 'उसे' नहीं खरीद सकती। 'वह' अजेय है, अमर है।

प्रेस रिपोर्टरों की आँखें गर्व और प्रसन्नता से चमक उठीं। सबने मोहन के एक-एक शब्द को कल के समाचार पत्रों में प्रकाशित होने के लिए नोट कर लिया।

न्यायाधीश ने सहम कर अपनी आँखें झुका लीं। दो-तीन क्षणों बाद जूरियों से सलाह-मशविरा करने के लिए वे उठने ही वाले थे कि न्यायालय में शैल आँधी की तरह आयी और न्यायाधीश के सामने पहुँच कर बोली—"माई लार्ड इस अभियुक्त की पैरवी मैं करूँगी···"

सबकी आँखें मोहन पर से हटकर शैल पर जा लगीं।

रामनाथ चीख उठा—"शैल, तुम चली जाओ यहाँ से !"

रामनाथ के साथियों में बेचैनी-सी फैल गई।

सुबोध के होठों पर मुस्कुराहट ऐंठ गई।

"आर्डर, आर्डर !"—न्यायाधीश चिल्लाया। तब मरघट की सी शान्ति छा गई।

न्यायाधीश ने मोहन की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखा।

मोहन ने कहा—"जब सफ़ाई किसी बात की देनी ही नहीं है, तो पैरवी का प्रश्न ही नहीं उठता···"

न्यायाधीश के कुछ बोलने के पहले ही सरकारी वकील ने उठकर कहा—"माई लार्ड, मेरी योग्य बहन को पैरवी करने की आज्ञा देना गैर कानूनी होगा, क्योंकि स्वयं अभियुक्त नहीं चाहता और न इनका वकालतनामा ही 'आनरेबुल कोर्ट' के सामने मुक़दमे के पहले आया है।"

"मुझे दुःख है मिस शैल कि मैं आपकी दरख्वास्त मंजूर नहीं कर सकता···"—कहकर न्यायाधीश उठ गए।

उनके साथ ही जूरियों का दल भी उठ गया।

मोहन के पास आकर शैलने कहा—"यह तुमने क्या किया मोहन ?"

"यही मुझे करना चाहिए था शैल, क्योंकि मैं जानता हूँ कि तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ जायगा। मेरा फैसला तुम्हारी पैरवी के बाद नहीं, इस मुकदमे के शुरू होने के पहले ही लिखा जा चुका है और कुछेक मिनटों में तुम स्वयं देख लोगी...!"

"पर ..."—

शैल की बात को बीच ही में काटकर मोहन ने कहा—"कोई लाभ नहीं शैल, कोई लाभ नहीं! मैं तो चाहता था कि तुम यहाँ आती ही नहीं, इसीलिए मैंने तुम्हें अपनी कसम दिलायी थी, फिर भी तुम न मानीं।"

"मोहन....!"—

मोहन ने शैल की आँखों में लहरें मारती दर्द की सरिता को देखा और उसे लगा कि उसकी भी आँखें भरती आ रही हैं।

बड़ी मुश्किल से उसने अपनी भरती आती आँखों को रोका और मुस्कुरा कर बोला—"पगली! तू तो व्यर्थ ही में अपना जी छोटा कर रही है। मुझे ये सब क्या, इनके भगवान भी नहीं मार सकते। अधिक से अधिक ये मुझे जेल में बन्द कर देंगे! पर कब तक बन्द रख सकेंगे? मैं फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगा और तब हमारी यह लड़ाई फिर शुरू होगी, नये सिरे से, नये जोश से!"

मन भर आने के कारण शैल कुछ नहीं बोल सकी।

अपना सिर झुकाकर बहुत धीरे से मोहन ने कहा—"मेरी गैर हाजिरी में एक काम तुम करना। 'मरघट' को अगर हो सके तो फिर किसी तरह छपाकर इस प्रान्त की जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न करना, क्योंकि 'मरघट' पर जब्ती की आज्ञा इसी प्रान्त के लिए है और वह लोगों के पास पहुँच भी नहीं सकी है!"

"विश्वास रक्खो। इस प्रान्त में भी और देश के सभी प्रान्तों के हर हिन्दी-भाषा भाषियों के घर में इसे पहुँचा दूँगी। तुम्हारे दिल की

आवाज को मैं इस तरह कैद नहीं होने दूँगी !"–शैल ने दृढ़ता से कहा।

मोहन मुस्करा उठा।

न्यायाधीश और जूरियों का दल बाहर आया।

अपनी कुर्सी पर बैठने के क्षण भर बाद न्यायाधीश ने अपना फैसला सुना दिया—"अभियुक्त मोहन पर लगाए सभी अभियोग सिद्ध हो गए हैं क्योंकि स्वयं अभियुक्त भी इस बात को स्वीकार करता है। इसलिए यह अदालत उसे तीन वर्ष कठोर कारावास और एक हजार रुपया जुर्माने की सजा देती है। जुर्माना न देने पर तीन माह की सजा और। और अदालत की मानहानि के दण्ड में उसे तीन महीने की सादी सजा और ढाई सौ रुपया जुर्माना। न देने पर एक महीने की सजा और। दूसरी सजा पहली सजा के खत्म होने पर शुरु होगी।..."

मोहन मुस्करा उठा।

शैल मन ही मन रो उठी। उसकी आँखें भींग आयीं।

न्यायालय के सभी लोगों ने आश्चर्य से मुस्कुराते मोहन को देखा। देखा और सोचा कि अजीब है यह व्यक्ति। इतने वर्षों की इसे सज़ा हो गई और यह मुस्कुरा रहा है दुःख की हलकी-सी छाया भी इसके चेहरे पर नहीं है, जैसे कैद उसके लिए खिलवाड़ हो गयी है।

पुलिस जब मोहन को ले जाने लगी, तो शैल लपक कर उसके पास आयी और अपनी आँसू भरी आँखें उसकी ओर उठा दीं।

मोहन ने उसका प्यार से हाथ दबाकर कहा—"समय जाते देर नहीं लगती शैल। मैं शीघ्र ही आ जाऊँगा। और हाँ, जुर्माने की रक़म मत जमा करना। मैं नहीं चाहता कि एक पैसा भी इनकी नींव मज़बूत करने के लिए दिया जाय।"

शैल कुछ बोल नहीं सकी।

केवल मोहन को देखती रही और मन ही मन ज़ार-ज़ार रोती रही। रोती रही और मन ही प्रार्थना करती रही कि समय का पहिया उसकी

पलक के गिर कर उठने के पहले ही घूम जाय, ताकि जब दुबारा उसकी पलक उठे, तो उसके प्राणों का देवता उसकी आँखों के सामने रहे।

"अच्छा, अब जाओ शैल। विदा!..."—कह मोहन पुलिस-वालों के साथ मस्तानी चाल से बढ़ गया।

पीछे-पीछे शैल भी आयी।

पुलिस-वैन में मोहन को बिठा कर पुलिसवाले भी बैठ गए और वैन जेल की ओर भाग चली।

अपनी भींगी नजरों से दूर, बहुत दूर, भागती जाती वैन को शैल देखती रही, जिसमें उसकी जिन्दगी कैद होकर जा रही थी। तब तक देखती रही जब तक कि उसकी धुँधली छाया भी उसकी नजरों के आगे से न गायब हो गई।

❋ बस ❋